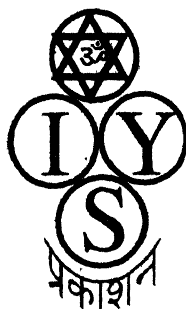
गृहस्थ जीवन निर्देशिका



लेखक
योगमार्तण्ड श्रीस्वामी ज्योतिर्मयानन्द

अनुवादक
योगिरत्न डॉ० शशिभूषण मिश्र एवं डॉ० प्रतिभा मिश्र

मूल्य :-
पचास रुपये (हार्डवाउण्ड लाईब्रेरी एडिशन)
तीस रुपये (पेपर बैक)
विदेशों में-छः डालर

प्रकाशक:- इन्टरनेशनल योग सोसायटी
लालबाग, लोनी, गाजियाबाद फोन (०५७५) ६६२३७
दिल्ली से लोकल:- ८१६६२३७

मूल स्रोत:- ADVICE TO HOUSE HOLDERS का अविकल
हिन्दी अनुवाद

प्रथम संस्करण- १९९२

द्वितीय संस्करण- १९९५

मुद्रक—योग-ज्योति प्रेस, लालबाग योगाश्रम लोनी (गाजियाबाद) उ० प्र०

अनुक्रमणिका

प्रकाशकीय

गृहस्थ जीवन निर्देशिका पुस्तक में श्री स्वामी ज्योतिर्मयानन्दजी कहते हैं कि गृहस्थ, मानव समाज के आधार हैं। सभी मनवीय उपलब्धियों तथा सांस्कृतिक उन्नति जिन पर मानवता को गर्व है, स्वस्थ पारिवारिक जीवन के कारण ही संभव हो सकी है।

आधुनिक युग में आश्चर्यजनक रूप से यांत्रिक उन्नति हुई है। एक दूसरे को पृथक करने वाला असीम आकाश अब धीरे-धीरे सिमटने लगा है। ब्रह्मण्ड ही अनन्त गहराई को उद्घाटित करने के लिए अब अन्तरिक्षयान भेजे जा रहे हैं, जिससे सुदूर ग्रह-नक्षत्रों की जानकारी हमें प्राप्त हो सके। अनन्त आकाश पर इस दुर्लभ विजय के बाद भी आज का मानव आध्यात्मिक और आत्मिक स्तर पर सम्पर्क तथा सामंजस्य बनाने में पूरी तरह असफल सहा है। अधिकांश परिवारों में बहुत अधिक अशान्ति, असंतुलन और आसमंजस्य है। दाम्पत्य जीवन में असुरक्षा आ गयी है। कई वर्षों तक साथ-साथ रहने के बाद भी पति या पत्नी एक-दूसरी से सम्बन्ध विच्छेद कर लेते हैं। आज के अधिकांश बच्चों को एक तनाव तथा अशान्त परिवार में जीने और बढने का बोझ उठाना पड रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक में श्री स्वामीजी के उन भाषाणों का संकलन है, जो २६ से ३० अक्टूबर १९८८ तक उन्होंने ओरलैडों-अमेरिका में बसे भारतीयों के समक्ष दिया था। इन दो दिनों मे कुल चार सस्त्र आयोजित हुए, जिनमें स्वामीजी ने गृहस्थ जीवन से सम्बन्धित विस्तृत विषयों पर चर्चा की। श्रोताओ ने मंत्र मुन्ध होकर इन भाषाणों को सुना और पारिवारिक जीवन में सुख, शान्ति तथा सामंजस्य बनाने के लिए इसे पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने का आग्रह किया। प्रस्तुत पुस्तक उनकी इच्छाओं का व्यक्त रूप है।

इस पुस्तक मे पति-पत्नी, अभिभावक-बच्चा, परिवार और समाज के बीच एकता और सामंजस्य उत्पन्न करने के लिए व्यावाहारिक निर्देश तथा

अन्तर्दृष्टि प्रदान की गयी है। विवाह के प्रति हिन्दू दृष्टिकोण मानव सम्बन्ध को एक नवीन दृष्टि और अर्थ प्रदान करता है। श्री स्वामी जी कहते हैं- "जीवन का लक्ष्य भोग विषय सुख नहीं है। विषय भोग को जब सही परिप्रेक्ष्य तथा यथोचित रूप से अपनाया जाएगा तो वैवाहिक सम्बन्ध पति-पत्नी के बीच विद्यमान आध्यात्मिक एकता को उद्घाटित करने का एक साधन बन जाएगा। जब भोग को ही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य नहीं मान लिया जाता, तो व्यक्ति के लिए सामंजस्य पूर्ण पारिवारिक जीवन व्यतीत करना आसान हो जाता है और पति-पत्नी आपस में अच्छी समझ और अनुकूलनशीलता बनाने में सफल हो जाते हैं। जीवन का लक्ष्य ईश्वर के साथ जुड़ना है।"

सच्चा प्रेम क्या है ? बच्चों को किस प्रकार शिक्षा देनी चाहिए ? पारिवारिक जीवन की विषम परिस्थितियों का सामना कैसे करना चाहिए ? दैनिक जीवन में गृहस्थों का कर्तव्य क्या है ? योग का अभ्यास कैसे करना चाहिए ? गृहस्थों का कर्तव्य क्या है ? संसार में हम सुख-शान्ति कैसे बढा सकते हैं ? इनके अतिरिक्त, पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित अन्य कई महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए इस पुस्तक के पृष्ठों को पलटें। आप अपने जीवन को रूपान्तरित करने के लिए अनेक प्रेरणादायक अन्तर्दृष्टि प्राप्त करेंगे और कल्पनातीत सुख, शान्ति तथा समांजस्य का अनुभव करेंगे।

समस्त संसार के दम्पत्ति जो सफल वैवाहिक जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, उनके लिए यह पुस्तक निश्चय ही एक वरदान सिद्ध

प्रस्तुत पुस्तक को तैयार करने में आश्रम प्रेस के कार्य कर्ताओं को-जिन्होंने योगदान किया है अनेक धन्यवाद है।

ईश्वर आप सबों को सफलता, सामंजस्य, शान्ति, समृद्धि और आत्मज्ञान प्रदान करें।

- स्वामी ललितानन्द
मयामी (अमेरिका)

अनुवादकीय

दाम्पत्य जीवन में प्रवेश करने के बाद आरंभ के कुछ दिनों में तक पति-पत्नी के बीच प्रेम-भाव बना रहता है। परन्तु, जब उन्हें जीवन की समस्याओं का सामना करना पड़ता है अथवा दोनों के अहंकार आपस में टकराने लगते हैं, तो एक संघर्ष खडा हो जाता है, जिसका सामना करना सहज नहीं। अब बडी उम्र में शादियाँ हो रही हैं। सामाजिक परिवर्तन, शिक्षा एवं वातारण के कारण पति अथवा पत्नी का एक निश्चित व्यक्तित्व बन चुका होता है।



उनकी धारणायें, मान्यतायें, संसार को देखने की दृष्टि सब कुछ अलग होती है। अन्य सभी सामाजिक परिवर्तनों के साथ पति को आंख बन्द कर परमेश्वर मानना तथा एक दूसरे को अग्नि के सामने साक्षी मानकर ग्रहण करने के कारण, आजीवन अनमनस्यक रूप से जीवन निर्वाह करने की बात, आधुनिक युग में सार्थक नहीं रही। फिर भी, इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि जब तक पति-पत्नी में परस्पर एकता, प्रेम, सहयोग और एक दूसरे के प्रति सम्मान की भावना नहीं होगी, तब तक जीवन में सुख, शान्ति प्राप्त करना असंभव होगा। इसलिए बदलते परिदृश्य में पति-पत्नी के सम्बन्धों को नवीन दृष्टि से देखने और मूल्यांकित करने की आवश्यकता है।

योगमार्तण्ड श्री स्वामी ज्योतिर्मयानन्द जी की पुस्तक- **ADVICE TO HOUSE HOLDERS** आज के सन्दर्भ में दाम्पत्य जीवन को

पुर्नमूल्यांकित करते हुए एक ओर सनातन हिन्दू संस्कृति के अनुसार पति-पत्नी के सम्बन्धों को प्रगाढ करती है और दूसरी ओर, बदलते सामाजिक परिवेश में परस्पर तालमेल बनाने के लिए व्यावहारिक मार्गदर्शन प्रस्तुत करती है।

श्री स्वामी जी मानते हैं, कि पति-पत्नी एक दूसरे को विभिन्न व्यक्तित्व के रूप में नहीं देखें। बल्कि, एक दूसरे को आत्मा मानते हुए इस सम्बन्ध को आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करने के साधन के रूप में प्रयुक्त करें। गृहस्थ जीवन भोग के लिए नहीं, वरन् जीवन के परम लक्ष्य-आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करने के लिए व्यतीत होना चाहिए। ज्योंही गृहस्थजीवन को हम आध्यात्मिक दृष्टि से देखने लगेंगे, उसी समय दाम्पत्य जीवन में सुख-शान्ति और सामंजस्य का सूत्रपात कर देंगे।

हमारे समाज को अधिकांश स्त्रियां पति को भर्ता भरण-पोषण करने वाला के रूप में देखती हैं। उनके जीवन का लक्ष्य पति को प्रसन्न करने तक ही सीमित रहता है। इस प्रकार वे स्वयं अपनी गरिमा खो बैठती हैं। स्त्री चाटुकार नहीं वरन् शक्ति है। पुरूष पुरूष है, स्त्री प्रकृति है। दोनों के सहयोग एवं सहायता से समाज के रचनात्मक कार्य सफलता से सम्पादित हो सकेंगे। प्रस्तुत पुस्तक में स्वामीजी ने एक और जहां स्त्रियों की गरिमा को उजागर किया है, वहीं दूसरी ओर, उन्होंने गृहस्थी में बुजुर्गो की महत्ता पर प्रकाश डाला है। आज के बर्हिमुखी सामाजिक वातावरण में बच्चों को सस्कारवान बनाने की आवश्यकता एवं उपायों का भी वर्णन इस पुस्तक में है।

Advice to house holders पुस्तक का प्रभाव हमलोगो पर इतना पडा कि हमने यह निश्चय किया कि मिल कर इस पुस्तक का अनुवाद करेंगे तथा अनेक दम्पत्तियों को भी इस अनमोल पुस्तक के अध्ययन से अपने पारिवारिक जीवन मे सुख, शान्ति और आनन्द लाने में थोडा योगदान करेगे। यह पुस्तक हम समस्त दम्पत्तियों को समर्पित करते हैं।

यदि इसके अध्ययन से एक भी दम्पत्ति को प्रेरणा और मार्गदर्शन प्राप्त हुआ तो हम अपना परिश्रम सार्थक समझेंगे।

यह भी स्पष्ट रूप से स्वीकार करते है, कि श्री गुरुदेव की मूल पुस्तक **Advice to house holders** में जो शक्ति, प्रेरणा, प्रवाह और सूक्ष्म आध्यात्मिक उद्‌बोधन है, वह इस हिन्दी संस्करण में नहीं है। अतः, जो अंग्रेजी पढते-समझते हैं, उनसे हमलोगों का विनम्र निवेदन है, कि वे मूल अंग्रेजी पुस्तक **Advice to house holders** का अध्ययन अवश्य करें। श्री गुरूदेव की अनन्त कृपा एवं आशीर्वाद से आप सबों का दामपत्य जीवन सुखद, शान्त, सफल और आनन्दमय बने ।

योगिरत्न डॉ० शशिभूषण मिश्र
M.B.B.S., D. Ortho., S.R.F

डॉ० प्रतिभा मिश्र
M.B.B.S., D.G.O., M.D

स्वमी ज्योतिर्मयानन्द आश्रम
लाल बाग लोनी- २०११०२
गाजियाबादए उ० प्र०

नव विवाहितों के लिए

प्रत्येक जन्म में
आप जो भी सम्बन्ध
बनाते हैं उसका लक्ष्य आध्या-
त्मिक पूर्णता प्राप्त करना है। इस
जन्म में भी यह लक्ष्य आपके लिए बहुत
महत्वपूर्ण है और इसे ही आपके वैवाहिक
जीवन का प्रकाश पुँज बनना चाहिए। पति-पत्नी
को इस प्रकार रहना चाहिए कि दोनों
तनाव रहित मन,शुद्ध हृदय, प्रखर
बुद्धि और सन्तुलित व्यक्तित्व
विकसित कर
सकें।

नव विवाहितों को संदेश

संबों में विद्यमान परमात्मा को प्रणाम !

वैदिक परम्परा के अनुसार जीवन की प्रथम अवस्था-ब्रह्मचर्य आश्रम में रह कर आपने विभिन्न प्रकार के ज्ञान और अनुशासनों का अभ्यास किया। अनेक विद्या में प्रवीण होकर अब आप विवाह के पवित्र बन्धन में बन्ध गये हैं और गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर चुके हैं। संस्कृत में दाम्पत्य जीवन को विवाह संस्कार कहा गया है। 'विवाह' शब्द का मूल ''वह''है जिसका अर्थ है- जीवन प्रवाह को बनाए रखने के लिए उत्तरदायित्व वहन करना।

यदि इस विशेष उत्तरदायित्व के प्रति आप सचेत और जागरूक हो जाएं, तो आपका जीवन परम सुख, संतोष, पूर्णता और आनन्द से भर जाएगा।

कर्मों के कारण आप दोनों मिले हैं

क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है, कि असंख्य जीवात्माओं के होते हुए केवल आप दोनों ही विवाह के एक ऐसे सम्बन्ध से जुड़ गए हैं जो अन्य सभी मानवीय सम्बन्धों से अधिक प्रभावकारी और स्थाई इसका कारण है कर्म सिद्धांत। कर्म के रहस्यमय विधान में आप दोनों ों को एक साथ इसलिए मिला दिया गया है, कि आप एक दूसरे को आध्यात्मिक विकास में सहयोग दे कर जीवन के अन्तिम लक्ष्य आत्म साक्षात्कारप्राप्त कर सकें।

एक दूसरे के विकास में सहायक

जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करना एक अकेले व्यक्ति के लिए बहुत कठिन है। आप अकेले न तो अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर सकते हैं और नहीं अपनी अपूर्ण-कामना, कोरी-कल्पना और स्वप्न-संसार से स्वयं को निकाल कर वास्तविकता के धरातल पर पांव जमा सकते हैं। अकेले आप अपनी आध्यात्मिक उन्नति भी नहीं कर सकते। इसलिए ईश्वरीय योजना के अन्तर्गत लोग एक दूसरे से जोड़ दिए जाते हैं।

आपने असंख्य बार जन्म लिया है। प्रत्येक जन्म में आपके अनेकों सम्बन्धीं हुए हैं। इस प्रकार असंख्य जन्मों के असंख्य सम्बन्धों के माध्ययम से आप का निरन्तर आत्मिक विकास हो रहा है। आत्मिक दृष्टि से आप अमर और शाश्वत हैं। भगवान श्रीकृष्ण की इस घोषणा का स्मरण करें।

वासांसि जीर्णनि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोपराणि।
यथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।

"जिस प्रकार नवीन वस्त्र धारण करने के पूर्व व्यक्ति पुराने वस्त्र को त्याग देता है, वैसे ही, जीवात्मा भी पुराने शरीर जो आत्मिक उत्थान के उपयुक्त नहीं है को त्याग कर नवीन शरीर धारण करती है। गीता अध्यायय २-२२।

प्रत्येक जन्म और सम्बन्ध का एक मात्र उद्देश्य आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त करना है।

इस जीवन में यह लक्ष्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आपके वैवाहिक जीवन का दिशा निर्देश करने वाला भी यही लक्ष्य होना चाहिए। इस लक्ष्य के आलोक में ही आप दोनों को संसार के अनजाने और अंधेरे पथ पर आगे बढ़ते जाना चाहिए। पति-पत्नी को इस प्रकार साथ-साथ कार्य करना चाहिए कि दोनों का मन शान्त तथा तनाव रहित रहे। दोनों का हृदय शुद्ध, प्रखर हो और दोनों का व्यक्तित्व संतुलित रूप से विकसित हो सके।

अधिकांश नवदम्पति अपने प्रणय प्रेम का आरंभ बहुत उत्साह, भविष्य के लिए अनेक भावात्मक आशा तथा अनगिनत संकल्पों के द्वारा करते हैं। परन्तु, धीरे-धीरे उनका सम्बन्ध बोझिल और निरूद्देश्य पारस्परिक निर्भरता के कारण एक ऐसे गर्त में गिर जाता है जहां जीवन का महान लक्ष्य ही पूरी तरह खो जाता । आपको इस मार्ग पर नहीं जाना चाहिए। यदि आप भी इसी रास्ते का अनुगमन करेंगे तो आपका वैवाहिक जीवन असफल माना जाएगा।

पति-पत्नी जहां तक संभव हो एक दूसरे को ईश्वरोन्मुख होने में सहयोग करें । यदि पति स्वयं पूजा-पाठ अथवा सत्संग-ध्यान नहीं करता है, तो उसे पत्नी को ऐसा करने से कभी रोकना नहीं चाहिए। इसी प्रकार यदि पति किसी आश्रम में जा कर सत्संग अथवा सेवा करना चाहता है, तो पत्नी को भी इसमें किसी प्रकार का अवरोध नहीं डालना चाहिए। आध्यात्मिक सोपान पर चढ़ते समय पति या पत्नी को कभी एक दूसरे का पैर नहीं खींचना चाहिए। उन्हें ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि आध्यात्मिक प्रगति पारस्परिक प्रेम में बाधक होगी। यदि ऐसी भावना उत्पन्न हो जाएगी तो वैवाहिक जीवन सुखद नहीं होगा।

आत्मिक दिशा में प्रगति करके ही आप स्थाई सम्बन्ध बना सकते हैं। यदि आप अपने जीवन से ईश्वर को अलग कर देंगे तो आपका जीवन खोखला बन जाएगा। आदर्श स्थिति तो यही है कि पति-पत्नी दोनों साथ-साथ सत्संग में भाग लें तथा ध्यान, प्रार्थना, सेवा और अन्य साधना करें । यही कभी न सोंचिए कि आध्यात्मिक साधना के कारण आपके सम्बन्धों में दरार पडेगी। इसके विपरीत सच्चाई तो यह है कि साधना आपके दाम्पत्य सम्बन्ध को और गहरा तथा स्थाई बनाता है।

यदि आप प्रतिदिन ध्यान, जप, प्रार्थना, सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय और यदाकदा ब्रत त्योहार मनाते हुए यथा संभव उपवास इत्यादि करते है, तो आप अपने वैवाहिक जीवन में विशेष प्रकार का आध्यात्मिक आकर्षण डाल देगे।

आपको यह धारणा नही बनानी चाहिए कि -"हमलोग आधुनिक सस्कृति में पले आधुनिक युवक हैं। हमें पुरानी परम्पराओ से क्या लेना देना ?

आध्यात्मिक क्रिया कलाप तो पुरानी बातें थी।" धर्म और ईश्वर के प्रति आपकी जितनी श्रद्धा और निष्ठा होगी उतनी ही शक्ति आप जीवन की विषम परिस्थितियों में प्राप्त करेंगे। जब आपके समक्ष ऐसी परिस्थितियां, ऐसी समस्यायें आ जाएगी, जब आपकी बुद्धि पूरी तरह असहाय और किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाएगी उस समय आपकी श्रद्धा ही आपकी सहायता करेगी।

इसलिए पति-पत्नी एक दूसरे को अधिक से अधिक आध्यात्मिक विकास के लिए प्रेरित करें। एक दूसरे को अधिक समर्पित, धार्मिक, अनुशासित और श्रद्धावान बनाने में सहायक हों। इसके विपरीत, यदि आप एक दूसरे को कुव्यवस्थित, स्वेच्छाचारी बनने में मदद करते हैं, तो आप एक दूसरे के शत्रु बन जाते हैं। अनुशासनहीन एवं अव्यवस्थित जीवन सभी प्रकार के दु:खों के लिए उर्वरा भूमि बन जाता है।

भोग नहीं योग

जो लोग पच्छिमी देशों में रहते हैं, वे इन्द्रिय-सुख और शारीरिक भोग को ही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य मानते हैं। उनकी वृत्ति विषयाकार होती है। ऐसे भौतिकवादी व्यक्ति जब यह अनुभव करते हैं कि उनके जीवन साथी से उतना आनन्द नहीं प्राप्त हो रहा है जिसकी उन्हें अपेक्षा थी, तो वे अपने पति अथवा पत्नी को तत्काल तलाक देकर दूसरी शादी कर लेते हैं।

हिन्दू विचार धारा के अनुसार ऐसा करना सर्वथा अनुचित है। भोग विषयसुख, जीवन का लक्ष्य नहीं है। जब भोग को मर्यादित ढंग से समुचित स्थान दे दिया जाता है तो यही पति और पत्नी के बीच आध्यात्मिक एकता को उद्घाटित करने का एक साधन बन जाता है। जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि जब इन्द्रिय सुख नहीं रह जाता, तो पारिवारिक जीवन में सुख-शान्ति और सन्तुलन बनाए रखने के लिए आवश्यक शक्ति व्यक्ति में स्वत: उत्पन्न हो जाती है और वह जीवन के गहरे मूल्यों के प्रति अधिक सचेत होकर, अनुकूलन शीलता विकसित कर लेता है। जीवन का लक्ष्य भोग नहीं बल्कि, योग-ईश्वर के साथ जुडना है।

गरिमामय बुढ़ापा बिताइए

क्या आपने कभी विचार किया हैं कि भौतिकवादी व्यक्ति जिनका लक्ष्य इन्द्रिय भोग रहा है, वे जब वृद्ध हो जाते हैं तो उनकी क्या हालत होती है? उन्हें अपने मन पर कोई नियंत्रण नहीं होता। परिणामत: उनका धैर्य और सहन-शक्ति समाप्त हो जाती है। वे बात-बात पर उत्तेजित हो जाते हैं। युवावस्था में भले ही उनके पास आश्चर्य जनक विचार, परिकल्पना और योजनायें क्यों न रही हों। परन्तु, वृद्धावस्था के आते ही वह सब समाप्त हो जाता है। भले ही कभी वे तीव्र बुद्धिवाले, चिन्ता रहित व्यक्ति रहे हों परन्तु, उम्र ढलते ही मानसिक रूप से दुर्बल, व संकल्पहीन और तुनक मिजाज़ी बन जाते हैं।

बृद्धों की तुनक मिजाजीं और अधीरता पर तो कई कहावतें भी बन गई हैं। कहा जाता है-"तूफान आता है, शोर मचाता है और थोडी देर में शान्त हो जाता है। परन्तु, जो तुनक मिजाजी और बात-बात पर क्रोधित होने वाले हैं, उनका शोर तो रात-दिन चलता रहता है। आप स्वयं को ऐसा बूढ़ा नहीं बनाइए।

यदि आप सावधान नहीं रहेंगे तो धीरे-धीरे उम्र बढ़ने से साथ आप में वे सभी दुर्गुण आ जायेंगे जिनको आप कभी पसन्द नहीं करते थे। परन्तु, जब ब्रह्मचर्य और गृहस्थाश्रम के समय आप थोड़ी सावधानी रखेंगे तो उनसे सहज ही बच सकते हैं। जब आप साधनामय धर्मावलम्बित जीवन व्यतीत करेंगें तो उम्र के बढने के साथ-साथ आप अधिकाधिक सुख, शान्ति-और संतोष का अनुभव करेंगे। आप तनाव रहित, आत्मशक्ति सम्पन्न और आत्मसंयमी बन जायेंगे। आपको अपने मन पर नियंत्रण होगा और आप अपने तथा सम्पर्क में आने वाले सभी लोगों के लिए प्रेरणा स्रौत बन जायेंगे।

परिस्थितियों के अनुकूल बनिये

परिवार में चाहे कितने अच्छे सदस्य क्यों न हों, परस्पर कितनी भी समझदारी क्यों न हो, फिर भी एक दूसरे के साथ अनुभव पर आधारित अनुकूलनशीलता उत्पन्न करना आवश्यक है। आपको एक दूसरे को अच्छी

तरह समझने में बहुत समय लगेगा। परिवार में शान्ति और सम्बन्धों में मधुरता लाने के लिए एक दूसरे को अच्छी तरह जानने की चुनौती आपके समक्ष हमेशा रहेगी। इस चुनौती को स्वीकार ने के बाद जीवन को अधिक सुव्यवस्थित तथा अनुशासित बनाकर ही आप पारस्परिक सम्बन्ध में कुछ अर्थ उत्पन्न कर सकते हैं।

ईश्वरीय योजना के अन्तर्गत पूरे गृहस्थ जीवन में प्रकृति आपको किसी न किसी रूप से अनुशासित और प्रशिक्षित करती है। यदि कोई गुरु आपको यह निर्देश देता है कि ध्यान, प्रार्थना तथा साधना के लिए आप प्रतिदिन चार बजे प्रातः उठिये, तो आप कहेंगें कि यह तो बड़ा कठिन काम है। परन्तु, यदि आपका छोटा बालक अचानक रात में रोने-चिल्लाने लगता है, तो आप उसके आराम के लिए तत्काल जग जाते हैं और जो भी आवश्यक है उसे बिना किसी झिझक के करने लगते हैं।

इस प्रकार आप देख सकते हैं कि प्रकृति कैसे विशेष साधनों से आपको अनुशासित करती है तथा आपके लिए अपने सुख-स्वार्थ का त्याग करने की परिस्थितियां उत्पन्न करती है। जैसे-जैसे आप अपनी अहंकारिक आशा की परिसीमाओं से ऊपर उठने लगते हैं, निम्नस्वरूप को त्याग कर जब किसी दूसरे की सुख-सुविधा के लिए अपने स्वार्थ की आहुति देनेकी कला ज्ञात कर लेते हैं, तो आप परिवार में सुख, शान्ति बनाये रखने के लिए आवश्यक, शिक्षाओं को सीख लेते हैं। इससे आपकी आध्यात्मिक प्रगति होती है तथा आप समाज की सेवा प्रभावकारी ढग से कर सकते हैं।

वास्तविकता से नहीं भागिए

वैवाहिक जीवन मे सुख शान्ति लाने के प्रयास में ईमानदारी पूर्वक लगे रहने का यह अर्थ नहीं है, कि आपका जीवन बिना किसी तनाव के निर्विघ्न चलता जाएगा और उसमें कभी कोई गलतफहमी, झगडा और गर्मा-गर्मी नहीं होगी। आपने कभी-कभी यह सुना होगा कि कोई दम्पत्ति पिछले ३० वर्षों के वैवाहिक जीवन मे एकबार भी नही झगडें। परन्तु, आपको यह भी खबर मिली होगी कि अगले वर्ष उन दोनों का सम्बन्ध विच्छेद हो गया।

वास्तविकता तो यह है, कि ऐसा संभव ही नहीं कि आप लोगों के साथ रहें और कभी कोई गलतफहमी न हो। कभी-कभी गर्मा-गर्मी, झगड़ा और कुछ गलतफहमी होना तो स्वाभाविक है। यदि किसी पति-पत्नी के बीच कभी कोई वाद-विवाद, झगड़ा और तनाव नहीं हुआ है, तो इसके दो ही कारण हो सकते हैं, या तो उन दोनों में परस्पर भय और आडम्बर है अथवा दोनों आत्मज्ञानी प्रबुद्ध आत्मायें हैं। आत्मज्ञान प्राप्त सन्त हैं। दो व्यक्तियों के बीच यदि वास्तविक प्रेम है तो उनमें पारस्परिक समझ और एक दूसरे के अनुकूल बनने की अद्‌भूत शक्ति भी अवश्य होती है। वे अपने मन की बात किसी भय, दबाव और आडम्बर के बिना कह सकते हैं और दूसरा उसे सुनने की शक्ति रखता है। उन दोनों में से कोई भी अपने मन की बात कहते समय डरते हुए यह नहीं सोचता कि -"यदि मैं अपने मन की बात कह दूं तो एक बहुत बड़ी समस्या खड़ी हो जाएगी। इसलिए, बनावटी मुस्कान ही हमारे सम्बन्धों को बनाए रख सकती है। दिखाने के लिए ही सही, परन्तु मुझे हँसते रहना चाहिए।

यदि पति पत्नि के सम्बन्ध का नियंत्रण भय से होता है, तो यह वास्तविक विवाह नहीं है। इसलिए दोनों को अनुकूलनशीलता की कला में प्रवीण होना आवश्यक है। सुखी गृहस्थजीवन का यह रहस्य है। जहां आत्मनिवेदन, सहनशीलता, धैर्य और उदारता है वहां उत्कृष्ट कोटि का गहरा प्रेम उत्पन्न होता है। इसके विपरीत, यदि पति-पत्नी एक दूसरे के प्रति ईमानदारी पूर्वक अनुकूल बनने के बदले क्रोध, निराशा और कड़वाहट के साथ एक दूसरे की इच्छा को दबाव में आकर पूरी करते हैं, तो ऐसा विवाह आत्मा के लिए एक बोझ हो जाता है। इस दबाव के कारण जीवन खोखला और बोझिल बन जाता है।

थोड़ीसी गलतफहमी अथवा कठिनाई के आते ही ऐसे पति-पत्नी का सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है।

एक दूसरे में विद्यमान परमात्मा का आदर करें

हिन्दू वैवाहिक परम्परा में यही आदर्श है कि पति-पत्नि को देवी और पत्नी अपने पति को राम, कृष्ण अथवा विष्णु रूप, ईश्वर मानकर उसकी आराधना करे। जब उन दोनों को सन्तान हो तो उसे भी भगवान का रूप

माना जाय। आपको ऐसी भावना करनी चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति की आन्तरिक वास्तविकता ईश्वर है। आप इस सत्य को जितनी गहराई से समझ लेते हैं उतनी ही गहराई से अपने परिवार के लोगों में ईश्वर की झलक देखने लगते हैं। उन्हें परमात्मा मानकर उनकी सेवा करते हैं। आपको ऐसा लगने लगता है कि इनकी सेवा के माध्यम से आप परमात्मा की सेवा कर रहे हैं। परमात्मा की पूजा कर रहे हैं। इस धारणा से मानवीय सम्बन्ध और उत्कृष्ट बनते हैं तथा विकट परिस्थिति में भी आप आश्चर्य जनक सहन शीलता प्रदर्शित करने में सफल हो जाते हैं। आप विषम परिस्थितियों में भी संतुलन नहीं खोते हैं।

किसी को भी यह आशा नहीं रखनी चाहिए कि बिना गहन प्रयास के आप अपने वैवाहिक जीवन में सब प्रकार से पूर्णता अथवा अनुकूलन शीलता ला सकते हैं। पारस्परिक प्रेम, तपस्या, धैर्य, अनुकूल बनने की कला और प्रार्थना के द्वारा ही वैवाहिक जीवन में थोड़ी बहुत पूर्णता प्राप्त की जा सकती है।

आपका लक्ष्य वैवाहिक जीवन में पूर्णता लाकर आदर्श सम्बन्ध बनाना नहीं है। बल्कि, आत्मसाक्षात्कार की ओर प्रगति करना है। जब तक मृत्यु आए आप दोनों को आत्मसाक्षात्कार के लिए तैयार हो जाना चाहिए। यही आपके जीवन का लक्ष्य है। यदि आपकी दृष्टि में यह लक्ष्य बना रहा तो आपके जीवन की गतिविधि और परिस्थितियों का विशेष अर्थ हो जाएगा। आपके लिए जीवन की सभी घटनायें और परिस्थितियां महत्वपूर्ण बन जायेगी। इस आध्यात्मिक लक्ष्य के अभाव में संसार आपके लिए असह्य पीड़ा, दु:ख एवं दर्द का सागर बन जाएगा।

ईश्वर से शक्ति प्राप्त कीजिए

अपने मन को ईश्वर की ओर प्रवाहित होने दीजिए। एक दूसरे में परमात्मा की विद्यमानता का अनुभव करते हुए एक दूसरे की सेवा, प्रेम और पूजा कीजिए। जब कभी समस्या उत्पन्न हो, कोई ऐसी परिस्थिति आए जहाँ आपको कोई मार्ग दिखाई न पड़ रहा हो, तो प्रार्थना, जप और समर्पण के द्वारा अपने अन्तर्वासी परमेश्वर से मार्ग दर्शन प्राप्त कीजिए। इसके साथ-साथ ईश्वर की ओर झुकने

के लिए किसी विकट परिस्थिति उत्पन्न होने की प्रतीक्षा नहीं कीजिए। सन्त कबीर ने कहा है :-

दु:ख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोई ।
जो सुख में सुमिरन करे, तो दु:ख काहे को होय ।।

इसका अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति जब कष्ट में होता है तो ईश्वर की याद करता है। सुखी रहने पर उसे ईश्वर की याद नहीं आती। जो सुख में भी परमात्मा को याद करता है। उसे भला दु:ख क्यों होगा ?

नारियल के पेड़ पर चढ़कर नारियल तोड़ने गए एक व्यक्ति की कहानी बहुत प्रचलित है। पेड़ पर चढ़ कर जब उस व्यक्ति ने नीचे देखा तो उसे चक्कर आने लगा। उसने परमेश्वर से प्रार्थना की-"हे परमात्मा, मुझे अच्छी तरह ज्ञात है कि मैं आपकी सहायता और शक्ति के बिना इस पेड़ से नीचे नहीं उतर सकता। यदि आप इस बार कृपा करके मुझे नीचे ला दें, तो मैं सारा नारियल मन्दिर में जा कर आपको अर्पित कर दूँगा।'' इस प्रार्थना से उसमें कुछ शक्ति आई और वह धीरे-धीरे नीचे उतरने लगा। जब वह कुछ नीचे आया तो उसने सोचा-"मैं सारा नारियल क्यों मन्दिर में दूँ ? केवल ७५ प्रतिशत ही देने से काम हो जाएगा।'' जब वह आधी ऊँचाई तक उतर आया तो उसके मनमें भाव उठा-"भगवान को तो इन सारी चीजों की कोई आवश्यकता नहीं होती। मैं केवल आधा नारियल ही मन्दिर में दूँगा।'' जब वह पूरी तरह नीचे आ गया तो परमात्मा को देने की बात ही भूल गया।

इस प्रकार जब भी आपके समक्ष जीवन की कोई चुनौती अथवा समस्या आये तो आप भी उस व्यक्ति की तरह नहीं बन जायें। ईश्वर को याद करने के लिए विपत्तियों की प्रतीक्षा नहीं करें और दु:ख दूर होते ही परमात्मा को भूल नहीं जायें। इसके विपरीत, प्रतिदिन ईश्वर समर्पण और ईश्वरीय भक्ति के माधुर्य का आनन्द लेते रहें। प्रत्येक पल यह अनुभव करें कि परमात्मा आपकी हर ओर से सुरक्षा कर रहे हैं। इस दिव्य सुरक्षा के अनुभव से पल-पल आनन्दित होते रहें।

आध्यात्मिक आदर्शों से प्रेरणा लें

हिन्दू धर्म में विवाह को एक पवित्र संस्कार माना गया है। सहिष्णुता, उदारता, त्यागपूर्ण प्रेम और आदर्श पारस्परिक सहयोग से संबन्धित हिन्दू साहित्य में अनेक कथायें मिलती हैं। राम-और सीता, सावित्री-सत्यवान और नल-दमयन्ती की कथा में आदर्श दम्पति का चित्रण किया गया है। सीता राम की कथा के लिए रामायण और नल-दमयन्ती की कथा के लिए महा भारत का अध्ययन करें।

ये कभी पूर्णता की प्रतिमूर्ति आदर्श दम्पति थे। जहाँ तक संभव हो इनके उदाहरण को जीवनान्तर्गत व्यवहार में लाने का प्रयास करना चाहिए। इन लोगों ने जैसे आत्मविलोपक प्रेम (वैसा प्रेम जिसमें अपने आपको भूलकर प्रेमी के स्वरूप के साथ एक हो जाना) का प्रदर्शन किया उसमें ही जीवन के गहरे मूल्य एवं सद्गुणों का विकास संभव होता है। इसके विपरीत जहाँ वासनागत प्रेम हुआ करता है, वहां आत्मा के सभी दिव्य गुण दब जाते हैं। उसका विकास नहीं हो पाता।

महान् संतान को जन्म दीजिए

वैवाहिक जीवन का एक सबसे महत्वपूर्ण उत्तरदाईत्व है संतान उत्पन्न करना तथा उन्हें जीवन की आध्यात्मिक और भौतिक चुनौतियों का सामना करने के योग्य बनाना। जिस प्रकार आपके बच्चों के साथ आपके परिवार का नाम जुटा है और वे अपने परिवार को अनेक प्रकार से सहयोग करते हैं। वैसे ही, उन्हें मानवता के इस परिवार में भी अपना रचनात्मक योगदान करना चाहिए। वे विज्ञ ., कला, दर्शन, धर्म अथवा अन्य किसी भी क्षेत्र में सफल बन सकते हैं। अपने ज्ञान और प्रतिभा से संसार में सुख, समृद्धि, शान्ति और आध्यात्मिक प्रबुद्धता के बीज बो सकते हैं।

अपने बच्चों के प्रेरणा स्रोत बनें

ब ्चा की शिक्षा आपके द्वारा प्रस्तुत उदाहरण से होनी चाहिए। अपने बच्चों को जो कुछ करने के लिए आप कहत ह, यदि उनका स्वयं आचरण

नहीं करते तो, आप एक आदर्श अभिभावक नहीं बन सकते। यदि आप अपने बच्चों को प्रातः काल ब्रह्ममुहूर्त में उठने को कहते हैं, तो आपको स्वयं भी ऐसा ही करना चाहिए। यदि आप बच्चों को विचारवान, धैर्यवान और निःस्वार्थी बनने की शिक्षा देते हैं, तो आपको अपने व्यक्तित्व में भी इन सभी गुणों को लाना होगा।

आरंभ से ही शुभ संस्कार डालें

मदालसा नामक आत्मज्ञानी रानी की कथा पुराणों में आती है। वह जब भी गर्भवती होती उस समय निरन्तर सद्चिन्तन और ईश्वर-भक्ति में हीलीन रहती थी। बच्चों के जन्म के बाद वह ऐसी लोरियां सुनाती जिसका अभिप्राय होता – "**शुद्धोसि, वुद्धोसि, निरंजनोसि, संसार माया परिवर्द्धितोसि।**"

"प्यारे बच्चे ! तुम यह शरीर नहीं, बल्कि आत्मा हो ! तुम ज्ञानी परिशुद्ध ब्रह्म् हो। तुम सांसारिक माया से पूर्णतः मुक्त और अप्रभावित हो।" मदालसा का प्रत्येक बालक बड़ा होने पर आत्मज्ञानी सन्त बन गया।

आपके विचार, भाव और मानसिक स्थिति का प्रभाव आपके बच्चों पर पड़ता है। अपने बच्चों के समक्ष आप जैसा आचरण प्रस्तुत करते हैं उसका संस्कार उन बच्चों पर वैसा ही पड़ता है। वास्तव में बच्चों की शिक्षा तो गर्भ से ही आरंभ होती है। माता के गर्भ में पल रहे बालक के मन पर उन सभी विचारों और भावों का प्रभाव पड़ता है, जो मां के मन में उठा करते हैं। इसलिए हिन्दू शास्त्रों में गर्भकाल की शिक्षा पर बहुत अधिक महत्व दिया गया है।

इस प्रकार माता-पिता दोनों का यह कर्तव्य है कि बच्चों के समक्ष ऐसी परिस्थितियां और वातावरण प्रस्तुत करे जो उन्हें जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार करें तथा उनके आध्यात्मिक उन्नति में सहायक हो। प्रत्येक गृहस्थ को इस कर्तव्य का पालन गंभीरता से करना चाहिए।

जब आप यह समझ लेंगे कि प्रकृति की ओर से आपको यह महान् कार्य दिया गया है, जिसे पूरी निष्ठा तथा ईमानदारी से आपको पूरा करना है तो

इससे आश्चर्यजनक फल प्राप्त होगा और आपको अद्‌भुत आनन्द का अनुभव होगा। जब आप एक सामंजस्य पूर्ण सुखी पारिवारिक जीवन के लिए प्रयास करेंगे तो मानवीय सम्बन्धों में आपको एक गहरे प्रेम का अनुभव होगा तथा जीवन में एक अद्‌भूत रस आने लगेगा। वृद्ध होने पर भी आप तनावरहित, संतुष्ट और शान्ति का जीवन व्यतीत कर सकेंगे। यदि रानी मदालसा के समान आप दोनों आत्मज्ञानी बन कर अपने बच्चों को आत्मसाक्षात्कार की ओर प्रेरित करने में सफल हो जाते हैं, तो आपने अपने गृहस्थ जीवन का कर्तव्य पूरा कर लिया और जो कुछ भी प्राप्त करने लायक है उसे प्राप्त कर लिया।

ईश्वरीय आशीर्वाद आपको प्राप्त हो।

जीवन के चार पुरुषार्थ

वेदों में जीवन के चार पुरुषार्थ का वर्णन है। इनमें प्रथम है धर्म। जीवन को यदि मूल्यवान और उद्देश्यपूर्ण बनाना है, तो जीवन की जड़े धर्म में स्थित होनी चाहिए।

दूसरा पुरुषार्थ है अर्थ। अर्थ का अभिप्राय जीवन को भौतिक रूप से सुरक्षित करने के लिए धन-सम्पत्ति और अन्य श्री-समृद्धि के लिए प्रयास करना है।

तीसरा पुरूषार्थ काम कहलाता है। जिसका अर्थ है-पारिवारिक सम्बन्धियों, मित्रों तथा अपने चतुर्दिक समाज के अन्य लोगों के साथ प्रेमपूर्ण सम्बन्ध बनाना। यदि आप अपने सम्पर्क में आए लोगों के साथ स्वस्थ सम्बन्ध नहीं बनाते हैं, तो आपकी समस्त समृद्धि व्यर्थ हो जाती है।

जीवन का परमपुरूषार्थ है **मोक्ष**। यह जीवन की आध्यात्मिक पूर्णता है।

आदर्श जीवन वहीं है जो धर्म में स्थित रहे। इसकी मर्यादाओं को तोड बिना ही सार्थक सामाजिक सम्बन्ध बनाये (काम) और समृद्धि अर्थ उतार्जित करे। फिर अपने सामाजिक और भौतिक सम्पत्ति का उपयोग और अधिक ध ार्मिक बनने में करते हुए मोक्ष की ओर अग्रसर हो।

परन्तु, असन्तुलित तथा अव्यवस्थित समाज में इस आदर्श की उपेक्षा कर दी जाती है। काम और अर्थ जिसका नियंत्रण धर्म के द्वारा होना चाहिए को ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य मान लिया जाता है। जब अनियंत्रित अर्थ और

काम आपके जीवन का केन्द्र बन जाता है तो आप दु:ख, निराशा, अशान्ति और अनेक समस्याओं में स्वयं को डूबा पाते हैं।

यदि आप के जीवन की जड़ धर्म में स्थित नहीं हैं और आप बहुत सम्पत्ति अर्जित कर लेते हैं, तो भी उस सम्पत्ति से आपको शान्ति नहीं मिलेगी। अधार्मिक साधनों से आप कोई खुशी नहीं खरीद सकते, भले ही इसके लिए कितने पैसे क्यों न खर्च कर दें। कभी-कभी यह देखा गया है कि जो जितना धनवान है, वह उतना ही दु:खी भी है। आप हवाई जहाज रख सकते हैं जिससे उड़कर नास्ता स्वटिजर लैन्ड में, दिन का खाना न्यूयार्क और रात का खाना लन्दन में खा सकते हैं। परन्तु, ये सब आपको सच्चा सुख नहीं दे सकते।

बहुत लोगों की यह धारणा होती है, कि यदि उन्हें करोड़ों की लॉट्री मिल जाय अथवा भाग्य के किसी बदलाव से वे रातो-रात अरब पति हो जाय तो जीवन की परिस्थितियाँ आश्चर्य जनक रूप से बदल जायेंगी। उनके विचार में सभी समस्याओं का समाधान पैसा से किया जा सकता है। परन्तु, यह उनका बहुत बडा भ्रम है। यदि कोई रातोरात करोड़ पति बन जाता है, तो बहुत सारी चीजें अवश्य परिवर्तित हो जायेंगी। परन्तु, यह आवश्यक नहीं कि परिवर्तनों से उस व्यक्ति के जीवन में सुख-शान्ति और आनन्द आ ही जाय।

धनवान व्यक्ति यह कभी नहीं जानपाता कि लोगों से जो प्रेम और स्नेह उसे प्राप्त हो रहा है, वह उसके अपने कारण मिल रहा है या उसके पैसे के कारण। धर्महीन धनवानों का जीवन अधिकतर खोखला होता है। जैसे-जैसे उसमें लोभ की अधिकता होती जाती है, उसमें और अधिक धन प्राप्त करने की एक अतृप्त तृष्णा उत्पन्न हो जाती है जिससे उसकी सुख-शान्ति हमेशा के लिए खो जाती है।

राजा ययाती की कथा

पुराणों में एक प्राचीन राजा जिसका नाम ययाती था की कथा आती है। अपने समय के अन्य राजाओं की तरह उसने भी लम्बे समय तक राज्य किया। एक दिन ययाती को ऐसा अनुभव हुआ कि अब बुढ़ापा आ रहा है। यद्यपि उसने

दीर्घ कालतक जीवन के सभी भोगों का आनन्द लिया था। परन्तु, यह सोचकर कि बुढ़ापे के कारण भोगों का आनन्द लेने में असमर्थ हो जाएगा, वह बहुत दु:खी हुआ। उसे अपना भविष्य अंधकारमय दिखाई पडने लगा।

चूंकि, उन दिनों ऐसा संभव था कि कोई व्यक्ति अपनी जवानी देकर दूसरे का बुढ़ापा ले ले। इसलिए राजा ययाती अपने युवा पुत्रों को बुला कर अपनी बुढ़ापा के बदले उनकी जवानी लेने का आग्रह किया। उसका एक पुत्र जीवन के सभी आनन्दों के प्रति पूर्ण उपरत था।

इसलिए, उसने विनम्रता पूर्वक राजा ययाती से कहा-"पिता श्री मैं अपनी जवानी के बदले आपका बुढ़ापा प्रसन्नता पूर्वक लेने को तैयार हूँ।" इस प्रकार राजा ययाती अपने पुत्र की जवानी लेकर पुन: युवा हो कर फिर भोग विलास का जीवन व्यतीत करने लगे।

समय के साथ राजा ययाती पुन: वृद्ध होने लगे। परन्तु भोग तृष्णा पहले ही की तरह प्रबल बनी रही। इस प्रकार उन्हें यह अनुभूति हुई कि विषय सुख के बार-बार सेवन से मन को तृप्त करना संभव नहीं। केवल ज्ञान और वैराग्य ही ऐसे सुखों की काम ना से मुक्ति दे सकता है। भोगेच्छा कभी समाप्त नहीं होती। भर्तृहरि कहते हैं-"तृष्णा ना जीर्णो वयमेव जीर्णा" तृष्णा अर्थात् बूढ़ी नहीं होती और नहीं समाप्त होती है। परन्तु, हमलोग बूढ़े हो जाते हैं।" वास्तविकता तो यह है कि व्यक्ति जैसे-जैसे वृद्ध होता जाता है, उसकी तृष्णा और अधिक प्रबल बनती जाती है।

केन्द्रीय लक्ष्य-मोक्ष

जीवन एक भवन के समान है। धर्म के बिना यह भवन आधार हीन है। अर्थ के बिना यह दीवाल रहित है। काम के बिना इस भवन में कोई साज सजावट नहीं और मोक्ष के अभाव में यह छत विहीन है।

इसलिए, जीवन को सन्तुलित और आध्यत्मिक योजना के अन्तर्गत विकसित करना चाहिए। धर्म की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। जीवन का यही

आधार है। धर्म में स्थित रहते हुए धन अर्जित कीजिए। अपनी सम्पत्ति का ठीक-ठीक और विवेक पूर्ण उपयोग कीजिए। इस क्रम में आप अनेक मित्र और सम्बन्धी बनायें जिस से आपको सुखी परिवार और अनुकूल समाज मिले।

परन्तु अर्थ और काम का आनन्द एक महान् साध्य के लिए साधन के रूप में होना चाहिए और वह साध्य है-मोक्ष, अर्थात् मुक्ति। यदि जीवन का लक्ष्य-मोक्ष को दृष्टि में नहीं रखा गया तो आपका जीवन लक्ष्यहीन जहाज बन जाएगा। परन्तु, जब मोक्ष प्राप्त करना आपकी दृष्टि में होगा तो यह जीवन आत्मा की अनन्त शक्ति, महिमा और सुन्दरता उद्घाटित करने की एक सुखद् प्रक्रिया बन जाएगा !

जीवन की चार अवस्थायें

प्राचीन हिन्दू संस्कृति में जीवन को चार अवस्थायें :- जिन्हें आश्रम कहा जाता है में विभक्त किया गया है। ये हैं-

ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और सन्यासाश्रम :

प्राचीन योजना

मानव जीवन एक सौ वर्षों का मानते हुए प्राचीन ऋषियों ने प्रथम पचीस वर्ष को ब्रह्मचर्याश्रम अर्थात् विद्यार्थी जीवन के लिए निर्धारित किया। दूसरे पचीस वर्ष अर्थात् पचीस से पचास वर्ष की आयु तक पारिवारिक जीवन व्यतीत करने के लिए निश्चित किया। इसी को गृहस्थाश्रम भी कहा जाता है। इसके बाद पचास से पचहत्तर वर्ष की आयु तक गृहत्याग कर तप, स्वाध्याय और संयम का जीवन जीने का निर्देश दिया गया, जिसे वानप्रस्थाश्रम के नाम से जाना जाता है। अन्तिम पचीस वर्ष को मुक्ति प्राप्त करने के लिए गहन ध्यान, चिन्तन तथा साधना में लगाने को कहा गया। यही सन्याश्रम की अवधि है।

उन दिनों के जीवन और परिस्थितियों को देखते हुए यह एक आदर्श योजना थी। यह सच है कि सभी समय और सभी लोगों के लिए यह कार्यक्रम अनुकूल नहीं सिद्ध होगा। वर्तमान समय में लोगों की आयु इतनी अधिक नहीं है। अत: प्रत्येक आश्रम की अवधि आवश्यकतानुसार फिर से निर्धारित की जा सकती है।

ब्रह्मचर्याश्रम

जीवन की पहली अवस्था ब्रह्मचर्याश्रम की है। विद्यार्थी जीवन की इस अवधि में व्यक्ति तप और अनुशासन का प्राथमिक पाठ पढ़ता है तथा उसे अपने व्यक्तित्व की गहराई में उतार कर जीवन की भावी सफलता की आधारशीला रखता है।

सीमित दृष्टि से ब्रहम्चर्य का अर्थ स्वयं को यौन सुख और विषयभोगों से अलग रखना है। विस्तृत दृष्टि से ब्रहम्चर्याश्रम शरीर, मन और इन्द्रियों को अनुशासित करने की एक ऐसी योजना है जिसमें जीवन के परम लक्ष्य-ब्रह्मसाक्षात्कार को प्राप्त करने के लिए आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त किया जाता है।

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्याश्रम में युवकों को यौन सम्बन्ध बनाने तथा उन चीजों से दूर रहने को कहा जाता है, जिसमे विषय वासना प्रबल होती है। विद्यार्थियों को यह समझाया जाता है कि यौन जीवन में बहुत बड़ी जिम्मेदारी उठानी पड़ती है। यदि इस उत्तरदाईत्व को ठीक ढंग से नहीं समझाया गया तो व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन व्यर्थ हो सकता है।

अनुशासन की आवश्यकता

जीवन की आरंभिक अवस्था में यदि व्यक्ति को अनुशासित नहीं किया गया, तो बाद में ऐसे बालक कुसंगति, मतिभ्रामक दवायें, नशीले पेय और आधुनिक समाज की अन्य बुराइयों के शिकार हो जाते हैं। फिर उनका जीवन एक अभिषाप बन जाता है। यदि व्यक्ति आवेग के प्रभाव में स्वेच्छाचारी हो जाय तो वह पागल बन जाता है। जो सच्चे अर्थों में स्वतंत्र होते हैं, उनकी बुद्धि परिपक्व होती है तथा वे स्पष्ट निर्णय ले सकते हैं। उन्हें अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण होता है। जहॉ अनुशासन और व्यवस्था रहती है, वहीं वास्तविक स्वतंत्रता भी होती है। जहाँ इन्द्रियों की दासता होती है, वहां स्वतंत्रता नहीं हो सकती।

जब आप बालक थे तो आपके माता-पिता आपको अनुशासित करते थे। उस समय आपको बहुत बुरा लगता होगा। संभव है अप इस कारण उनसे घृणा भी करने लगे हों। परन्तु बड़े होने पर आप ऐसा करने के लिए उनके प्रति आभार प्रकट करते हैं। जैसे-जैसे आप परिपक्व होते हैं, आपको यह अनुभव होता है कि आप को अच्छी तरह प्रशिक्षित और चतुर्दिक विकास के लिए अनुशासित करना उनका कर्तव्य था। आप उनके जीवन में अबोध और अनजान शिशु के रूप में आए थे। आपको जीवन में मूल्यों के प्रति सचेत और शिक्षित करना उनका कर्तव्य था जिससे आप आगे चलकर बड़े उत्तरदाईत्व ले सकें और जीवन के ऊंचे उद्देश्यों को प्राप्त कर सकें।

इस प्रकार अनुशासन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। परन्तु इसका कब और कैसे अभ्यास किया जाय इसकी कोई सुनिश्चित रूप रेखा नहीं दी जा सकती। इसलिए, अभिभावकों को इस महत्वपूर्ण कलाको सीखने के लिए गहन चिन्तन-मनन करने की आवश्यकता है। समान्य रूप से प्रेम के साथ दृढ़ता का सिद्धान्त का पालन करना चाहिए। जब आवश्यक हो उस समय आप अवश्य कठोर बनिये। परन्तु यथा समय मधुर प्रेम तथा स्नेह की भी अभिव्यक्ति आवश्यक है। आपके अन्तर्मन में निरन्तर प्रेम का प्रवाह संचारित होते रहना चाहिए। सच्चा प्रेम चाहे वह परिपक्व लोगों, अभिभावकों अथवा बच्चों के बीच क्यों न हों, अनुशासित होने से कभी भयभीत नहीं होता।

गृहस्थाश्रम

गृहस्थाश्रम के कन्धों पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी होती है। ये ही समाज की रीढ़ है। गृहस्थों पर ही सम्पूर्ण सामाजिक ढ़ांचा टिका रहता है। इन से ही नई पीढ़ी उत्पन्न होती है जो साहित्य, कला, विज्ञान, अध्यात्म और सभी प्रकार की उन्नत संस्कृतियों का विकास करती है।

अच्छी संतान का सुख और उनके प्रति दायित्व

हिन्दू धर्म के अनुसार गृहस्थों को चाहिए कि विशेष गुण तथा प्रतिभा सम्पन्न सन्तान उत्पन्न करें। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उन्हें तप और उपासना का अभ्यास करना चाहिए।

वेदों के अनुसार शिशु विकासशील एक जीवात्मा है। इसका जन्म किसी परिवार में अकस्मात नहीं हो जाता है। जिस परिवार में इसके विकास की सर्वश्रेष्ठ और अनुकूल परिस्थितियॉ प्राप्त हो सकती हैं, उसमें ही इसका जन्म होता है। यदि पति-पत्नी तप, त्याग और उच्च नैतिक जीवन व्यतीत करें तो आत्माओं को पुत्र वे उन्नत अथवा पुत्री के रूप में आकर्षित कर देश प्रेमी, कलाकार, वीर, प्रतिभाशाली अथवा अन्य किसी विशेष गुण सम्पन्न संतान प्राप्त कर सकते हैं।

जब आप धर्मग्रन्थों का अध्ययन करेंगे तो आपको ज्ञात होगा कि भगवान श्रीकृष्ण ने सन्तान प्राप्ति के लिए बारह वर्षों तक गहन तप किया था। भगवान कृष्ण ने ऐसा क्यों किया ? इसका कारण यह था कि वे लोगों के समक्ष यह आदर्श प्रस्तुत करना चाहते थे कि वैवाहिक जीवन का उद्देश्य केवल भोग नहीं बल्कि, इसका लक्ष्म बहुत महान और गहरा है। अपने विषय भोग के उत्पादन के रूप में आप अपनी संतान को जन्म नहीं देते। इसके विपरीत आप अपने वासनावेग को इस प्रकार नियंत्रित और व्यवस्थित करते हैं कि विशेष गुण सम्पन्न आपके परिवार में जन्म लें।

अपने परिवार में महान आत्मा को सन्तान रूप में लाना उसे शिक्षित तथा विकसित करने के लिए अनुकूल परिवेश प्रदान करना आपको विशेष प्रकार का सद्कर्म करने का एक अनुपम अवसर प्रदान करता है। बच्चे की जीवात्मा का अभिभावक की जीवात्मा के साथ धनात्मक अन्तर्मिलन, कर्मों के प्रतिफलन की एक महत्वपूर्ण विधि है। बच्चों को शुभ कर्म करने की ओर प्रेरित करने के परिणाम स्वरूप, आप अपने तथा समाज के लिए शुभ कर्म करते हैं। आप अचेतन रूप से अपने बच्चों से निरन्तर प्रभावित होते रहते हैं।

कहा जाता है कि एक बार जब दरबार चल रहा था, तब राजा अकबर अपने पोते के साथ वहीं खेल रहे थे। अबोध बालक अचानक अकबर के सिर पर चढकर उनकी मोंछ पकड़ कर खींचने लगा। भरे राजदरबार में महाराजा का ऐसा अपमान सबसे बड़ा अपराध है।

राजा ने बीरबल की ओर देखते हुए पूछा-"इस अपराध के लिए इस बालक को क्या दण्ड देना चाहिए ? बीरबल ने कहा-

"महाराज, चूँकि यह बालक सम्राटों का भी सम्राट है, इसलिए उसको ऐसा करने का पूर्ण अधिकार है।" "यह कैसे ?" अकबर ने कहा। "इसे सिद्ध करो अन्यथा कठोर दण्ड के लिए तैयार रहो।" बीरबल ने इस बात को सिद्ध करने के लिए कुछ समय की मॉग की।

एक दिन जब दरबार लगा था और नन्हा बालक अकबर के साथ खेल रहा था, बीरबल ने बच्चे के पास एक सर्प छोड़ दिया। केवल बीरबल को ही ज्ञात था कि सर्प जहरीला नहीं है। बच्चा हँसते हुए उस सांप को पकड़ने का प्रयास करने लगा। अकबर तो भय से काँपने लगा। यह देख कर बीरबल ने कहा-"महाराज हमारे कथन का यही प्रमाण है। देखिये जो सम्राटों का भी सम्राट है उसे किसी प्रकार का कोई भय नहीं है।"

इस कहानी का अभिप्राय यह है कि अभिभावकों को अपनी संतान से भी बहुत कुछ सीखना चाहिए। बालक के रूप में जो आत्मा आपके घर आई है, उसकी देखरेख और पालन पोषण करने में आप अपने आन्तरिक जीवन को सुव्यवस्थित तथा स्वयं को अनुशासित करने का एक सुअवसर प्राप्त करते हैं। इसके साथ-साथ एक अद्भूत वात्सल्य भाव और आनन्द का अनुभव करते हैं। कुछ बातों से आप बहुत चिन्तित हो सकते हैं, परन्तु उसी वातावरण में आपका बालक शान्त तथा निश्चिन्त रहता है। ज्योंहि आप अपने बालक के समीप आते हैं तो आप भी मुस्कुराने लगते हैं।

वानप्रस्थाश्रम

पारिवारिक जीवन का आदर्श यह होना चाहिए कि एक या दो बच्चों को जन्म देकर पति-पत्नी पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करें। अधिकांश लोगों के मन में यह भय है कि यौनसम्बन्ध के समाप्त होने के साथ उनके वैवाहिक जीवन के आनन्दों का अन्त हो जाता है। परन्तु, सच्चाई यह नहीं है। इसके विपरीत, जो सम्बन्ध विषय भोग पर आधारित होता है, वह खोखला, असुरक्षित और

क्षणिक हुआ करता है। जैसे-जैसे पति-पत्नी के मध्य गहरी एकात्मता उत्पन्न होने लगती है, उनके सम्बन्धों में आनन्द के एक नवीन आयाम का द्वार खुल जाता है क्योंकि, वे एक दूसरे की आध्यात्मिक प्रगति में सहयोगी बन जाते हैं।

धीरे-धीरे समय बीतने के साथ-साथ चेतना की एक ऐसी अवस्था आती है, जब व्यक्ति परिवार की परिसीमा से परे होकर मानवता के कल्याण के लिए स्वयं को समर्पित कर देता है। इस आदर्श को ध्यान में रखते हुए लोग अपने परिवार को त्यागकर बन प्रस्थान करते थे तथा तप-स्वाध्याय का अभ्यास करने के पश्चात समाज में आकर ज्ञान दिया करते थे। इनमें से कुछ ऐसे ऋषि होते थे, जो गुरुकुल की स्थापना कर बच्चों को विविध ज्ञान की शिक्षा देते थे।

आधुनिक युग में बिना बन गमन के ही इन आदर्शों को अपनाया जा सकता है। आप अपने को इस प्रकार तैयार कर सकते हैं कि अवकाश प्राप्त करने के पश्चात अपने क्षेत्र अथवा समाज के बच्चों और नवयुवकों को अपने जीवन के अनुभवों तथा ज्ञान से अवगत करायें। उन्हें शिक्षित करें। किसी वृद्धाश्रम अथवा अपने ही घर में निष्क्रिय पड़े रहने से अच्छा तो यह है कि आप बच्चों तथा नवयुवकों के साथ सम्पर्क करें। उन्हें अपना अनुभव बतायें तथा उन्हें जीने की कला से अवगत करायें। इस प्रकार, आप अपने तथा उनके जीवन को उन्नत और समृद्ध कर सकते हैं।

यदि वानप्रस्थाश्रम को हम इस आधुनिक दृष्टिकोण से अपना लेंगे, तो वृद्धों का मन तेजस्वी तो रहेगा ही वे अपने तथा समाज के लिए आनन्द का स्रोत भी बन जायेंगे। अपमानित, उपहासित होने के बदले, वे मान-सम्मान का जीवन व्यतीत करते हुए सबसे प्रेम प्राप्त कर सकते हैं।

सन्यासाश्रम

धीरे-धीरे समय व्यतीत होने के साथ-साथ आप में क्षणिक भौतिक सुखों के प्रति गहन वैराग्य उत्पन्न हो सकता है। तब आप किसी गुरु के आश्रम में जाकर औपचारिक रूप से सन्यास ग्रहण कर सकते हैं अथवा मानसिक रुप

से स्वयं को सन्यासी मानते हुए जन कल्याण के कार्यों के प्रति स्वयं को समर्पित कर सकते हैं। भारत में इन दोनों आदर्शों को अपनाने की प्रथा है। वास्तविक लक्ष्य तो मानसिक सन्यास है, जिसमें आप आन्तरिक रूप से यह अनुभव करते हैं-"मैं परमात्मा के साथ एकीभूत हो गया हूँ। मेरा कुछ भी नहीं है। ये सब कुछ ब्रह्म है।"

सन्यासी का लक्ष्य है-ईश्वर साक्षात्कार के द्वारा मुक्ति प्राप्त करना। इस आदर्श को अपने जीवन काल में ही प्राप्त कर लेना चाहिए। इसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जीवात्मा अनन्त जन्मों से जन्म-मृत्यु के चक्र में आती-जाती रही है। यही सबसे महान् लक्ष्य और उपलब्धि है। सन्यासी जैसे-जैसे आध्यात्मिक उन्नति के उच्च सोपान पर चढ़ता जाता है दूसरों के लिए प्रेरणा तथा मार्गदर्शन का स्रोत बनने लगता है। वह सबों के कल्याण में ही निरन्तर निमग्न रहता है-"**सर्वभूतहितेरता :**"

योजना की विविधता

यह आवश्यक नहीं कि सभी व्यक्ति इन चारों आश्रम को अपनायें हीं। यदि कोई ब्रह्मचर्याश्रम में ही उत्कट वैराग्य उत्पन्न कर लेता है, तो उसके लिए आवश्यक नहीं कि गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे। वह आजीवन ब्रह्मचारी भी रह सकता है। ऐसे व्यक्ति को नैष्टिक ब्रह्मचारी कहते हैं।

यदि पूर्वजन्मों के शुभ संस्कारों के कारण बह्मचारी विषय भोग की तीव्र कामना को मुमुक्षत्व आत्मसाक्षात्कार की उत्कट आकांक्षा में रूपान्तरित कर सीधे सन्यास लेता है तो उसके अभिभावक को दु:ख नहीं होना चाहिए। विगतजन्मों के अत्यन्त प्रबल शुभ संस्कारों से ही ऐसा संभव होता है। फिर भी, अभिभावक को यह अच्छी तरह देखना चाहिए कि उनका बच्चा किसी निराशा, असफलता अथवा अपरिपक्वता के कारण तो सन्यास लेने की ओर नहीं प्रवृत हो रहा है ? यदि ऐसा है तो अभिभावक़ को चाहिए कि वे अपने बच्चे को उस दिशा में बढने से रोंके, क्योंकि वह आगे चलकर सन्यास में सफल नहीं होगा।

सन्यास लेने का निर्णय पूर्ण आत्मविश्वास के साथ होना चाहिए। यदि व्यक्ति में सन्यास के प्रति शक्तिशाली लगाव और प्रबल प्रेरणा नहीं है, तो वह ब्रह्मचर्य के नाम पर भटक जाएगा। सन्यास के रास्ते पर चलने के लिए वीरतापूर्वक लिया गया दृढ निश्चय आवश्यक है। भावनात्मक प्रवाह में आकर सन्यास नहीं लेना चाहिए। जिन लोगों ने आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करने का दृढ निश्चय कर लिया है तथा जिनका अन्तर्मन आध्यात्मिक प्रेरणा के स्पन्दनों से परिपूर्ण है, वे ही सन्यास के अधिकारी हैं। ऐसे व्यक्ति बहुत कम हुआ करते हैं।

जन्म-जन्मान्तर से जीवात्मा का पीछा करने वाली जैविक वृत्तियों **(Biological urge)** से ऊपर उठने के लिए अत्यधिक आत्मिक शक्ति की आवश्यकता होती है। परन्तु वैराग्य से व्यक्ति इससे ऊपर उठ कर स्वयं को किसी गुरु के निर्देशन में समर्पित कर सकता है, जहां उसकी वासना-शक्ति का ओजस में रूपान्तरण हो जाता है।

भीष्म पितामह नैष्टिक ब्रह्मचारी के उदाहरण हैं। अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण कर लेने के कारण उन्हें इच्छा मुत्यु की सिद्धि प्राप्त हुई थी। आदिशंकराचार्य ने बि गृहस्थ जीवन में प्रवेश किए ही सन्यास ग्रहण कर लिया था। ऐसे प्रबुद्ध लोगों के लिए आश्रम व्यवस्था के अनुसार जीवन व्यतीत करने की कोई आवश्यकता नहीं है। ये ऐसे आत्मज्ञानी लोग हैं, जो ब्रह्मचर्य आश्रम में जीवन आरंभ करते हैं और उसी में ही जीवन का परम लक्ष्य-ईश्वर साक्षात्कार प्राप्त कर लेते हैं।

पूर्व नियोजित आश्रम के अनुसार जीवन व्यतीत किए बिना ही यदि कोई मुक्ति की ओर निरन्तर अग्रसर होता रहता है, तो उसे स्वार्थी नहीं कहा जा सकता। इसके विपरीत, उसका जीवन अत्यन्त उत्कृष्ट और दिव्य है, जहां स्वार्थभावना पूरी तरह समाप्त हो जाती, निम्नस्वरूप को अस्वीकृत कर दिया जाता और व्यक्ति संसार में जो भी सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् है उसका अजस्त्र स्रोत बन जाता है।

संस्कार

मेरा मन आत्मज्ञान से सम्पन्न बने। मुझे
संकल्प शक्ति प्राप्त हो। मैं अपने
कर्तव्यों का पालन श्रद्धा और
भक्ति भावना से करता
रहूँ। मेरा मन
शांत और
एकाग्रित
रहे। मुझे ऐसी
विवेक शक्ति मिले जिस
से मैं सत्य का साक्षात्कार कर
सकूँ। मेरी इन्द्रियाँ स्वस्थ एवं शक्ति
शाली बनें। मेरे जीवन में यज्ञ भावना व्याप्त
हो तथा सामवेद के संगीत से परिपूर्ण बनें!

आरंभिक संस्कार और गर्भ शिक्षा

संस्कार का शाब्दिक अर्थ है-छाप-चिन्ह। परन्तु वे सभी विशेषानुष्ठान और धार्मिक क्रियायें भी संस्कार कहलाती हैं, जिनके कारण मन में शुभ वृत्तियों का बीजारोपण होता है। प्राचीन ऋषियों ने संस्कारों के माध्यम से मानव जीवन को आध्यात्मिक स्पन्दनों से परिपूर्ण करने की उत्कृष्ट प्रणाली का आविष्कार किया था। ये सभी संस्कार परिशोधक क्रियायें और विशेष प्रकार के अनुष्ठान हैं। इनसे मानव जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं-गर्भाधान से लेकर दाह-संस्कार तक का आध्यात्मिकरण हो जाता है।

एक हिन्दू को अपने जीवन काल में बावन संस्कार करने होते हैं। इन में दस तो अत्यन्त प्रमुख हैं-**गर्भाधानम्, पुंसवनम्, सीमान्तोन्नयनम्, जातकर्म, नामकरणम्, अन्नप्राशनम्, चूड़ाकरणम्, उपनयनम, समवर्तनम् और विवाह।** इसके अतिरिक्त ईशपूजन जैसे संस्कार तो प्रतिदिन किए जाते हैं। परन्तु कुछ ऐसे भी संस्कार हैं, जिन्हें विशेष अवसर पर ही किया जाता है। श्राद्ध संस्कार, जो म त्त पूर्वजों की आत्मा की शान्ति तथा उन्नति के लिए किया जाता है, विशेष तिथियों और दिन को ही हो सकता है।

गृहस्थाश्रम के बाद बानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करते समय एक विशेष प्रकार का संस्कार किया जाता है। इसके पश्चात् सन्यासाश्रम में प्रवेश करते समय भी एक विशेष संस्कार का विधान है। इसके पश्चात् व्यक्ति अपना शेष जीवन आत्मसाक्षात्कार और ज्ञान प्राप्ति में ही लगा देता है और मानवता में अपने ज्ञान को वितरित करता रहता है।

गर्भाधानम्

हिन्दू विचार धारा के अनुसार, माता-पिता अपनी इच्छानुसार सन्तान प्राप्त कर सकते हैं। सूक्ष्म जगत् मे पुनर्जन्म लेने की प्रतीक्षा में जो आत्मायें हैं, उनमें से वे जैसा भी गुण अथवा प्रतिभा सम्पन्न सन्तान चाहें, पा सकते हैं। यदि दम्पत्ति साधनामय जीवन व्यतीत करते हुए स्वयं को अनुशासित करे तो वे निश्चित रूप से अत्यन्त उन्नत आत्मा को संतान रूप में पा सकते हैं।

इस लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए पति-पत्नी संभोग से पूर्व विशेष प्रकार के मंत्रों का जाप तथा प्रार्थना करते हैं। वैदिक मंत्रों के स्पन्दनों से युक्त वातावरण में गर्भाधान सम्पन्न होता है। यदि उन दोनों के मन में गहराई से किसी सन्त को सन्तान के रूप में पाने की इच्छा होती है, तो इस प्रकार से गर्भधारण करने वाला शिशु निश्चित रूप से ईश्वर भक्त बनता है। यदि वे प्रतिभाशाली, कलाकार अथवा वैज्ञानिक की तीव्र इच्छा करते हैं, तो बालकी प्रवृत्ति भी उसी दिशा में हो जाती है।

पुंसवनम्

ऐसा विश्वास है कि गर्भ के तीसरे महीने में शिशु का अन्नमय और प्राणमय कोष का निर्माण होता है। गर्भस्थ शिशु के कल्याण और विकास के लिए इस समय वैदिक मंत्रों के साथ एक विशेष संस्कार किया जाता है।

सीमान्तोन्नयनम्

गर्भ के सातवें महीने में शिशु के मनोमय तथा अन्य उन्नत कोष बनते है। इस समय शिशु और माता की सुरक्षा के लिए विशेष मंत्रों के द्वारा यह सस्कार सम्पन्न किया जाता है।

जातकर्म

शिशु के जन्म लेने के तुरन्त बाद इस संस्कार का विधान है। पिता मंत्रोंच्चारण के साथ नवजात शिशु का स्वागत करता है तथा उसके दीर्घ-जीवन, प्रखर स्वास्थ्य, प्रबल प्रज्ञा तथा कल्याण के लिए प्रार्थना करता है।

आपके बालक की वास्तविक पहचान क्या है ?

इस तथ्य को याद रखना अत्यन्त आवश्यक है कि आपके घर में जन्मा शिशु पुनर्जन्म प्राप्त करने वाली जीवात्मा है जो इसके पूर्व असंख्य बार अनगिनत परिवारों में जन्म ले चुका है। वर्तमान अभिभावकों ने एक ऐसी आत्मा को

सन्तान के रूप में आकर्षित किया है, जो अनादि काल से है और अनन्त काल तक रहेगी। वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा स्वयं परमात्मन् ब्रह्मन् है। माता-पिता तथा पुनर्जन्म लेने वाली जीवात्मा के पारस्परिक कर्मों के प्रतिफलन के कारण ही परिवार में नवजात शिशु का जन्म होता है।

प्रतिफलित कर्मों की दिव्य योजना के अन्तर्गत, माता-पिता को जीवात्मा के साथ सन्तान रूप में विभिन्न कर्मों मे प्रवृत्त होने की आवश्यकता पड़ती है। बदले में माता -पिता के संरक्षण में पलता हुआ बालक विभिन्न प्रकार के सुखद् अथवा दु.खद् अनुभव प्राप्त करता है। विस्तृत दृष्टि कोण से माता -पिता को भी अपने बच्चों से उतना ही सीखना चाहिए जितना कि बच्चों को माता-पिता से।

शिक्षा जन्म से पूर्व ही आरंभ होती है

हिन्दू विचार धारा के अनुसार, माता के गर्भ में भ्रूण के विकास के साथ ही शिक्षा का आरंभ हो जाता है। यदि माता का मन उन्नत सात्विक स्पन्दनों और आदर्शों से परिपूर्ण रहता है, तो गर्भ में पल रहे बालक पर इन विचारों की गहरी छाप पड़ जाती है। शास्त्रों में इस कथन की सत्यता सिद्ध करती हुई एक कथा का वर्णन है।

अभिमन्यु की कथा

अर्जुन और सुभद्रा के पुत्र-अभिमन्यु की कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसमें यह बताया गया है कि चक्रव्यूह में प्रवेश करने की गुह्य और जटिल कला को गर्भ में पल रहे बालक ने कैसे सीख लिया। जब अभिमन्यु गर्भ में ही था तो एक समय अर्जुन सुभद्रा को चक्रव्यूह भेदन की अत्यन्त कठिन और रहस्यमय कला बता रहे थे। सुभद्रा उनकी बातों को बहुत ध्यान से सुन रही थी। जब अर्जुन यह बताने लगे कि वीर योद्धा इस व्यूह से बाहर कैसे निकलते हैं, उसी समय सुभद्रा को नीन्द आ गई।

बाद में जब महाभारत का महा संग्राम हुआ तो अपने चाचा और ताऊओं को अभिमन्यु ने बहुत अधिक सहयोग दिया। एक बार वह बहुत कुशलता के साथ चक्रव्यूह में प्रवेश कर गया। परन्तु, उससे बाहर निकलने की कला उसे नहीं ज्ञात थी। उसने पाण्डवों की विजय के लिए वीरता पूर्वक युद्ध किया। परन्तु, व्यूह से बाहर नहीं निकल सका और वीरगति को प्राप्त हो गया।

उसकी मृत्यु का कारण यह माना जाता है कि चक्रव्यूह से बाहर निकलने

की कला जब अर्जुन उसकी माता को समझा रहे थे तो सुभद्रा सो गई थी। परिणामत:, गर्भ में पल रहा अभिमन्यु इस रहस्य को न जान सका। यह कहानी यह बताती है, कि गर्भवती माता के विचारों तथा भावों का कितना अधिक प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पडता है।

प्रह्लाद की कथा

देवासुर संग्राम के समय दैत्यराज हिरण्यकश्यपु अपनी राजधानी से बाहर गया हुआ था। उसकी अनुपस्थिति में देवताओं ने उसके महल को जीत कर उसकी पत्नियों को बन्दी बना कारागार में डाल दिया। उनमें से एक पत्नी गर्भवती थी। उसके गर्भ में प्रह्लाद पल रहे थे।

एक बार ऋषि नारद उस दिव्य कारागार में पधारे और विष्णु का गुणगान करने लगे। प्रह्लाद की माता ने उनकी वाणी श्रद्धायुक्त भाव और तन्मयता से सुनी। परिणामत: प्रह्लाद मे जन्म के तुरन्त बाद से ही भक्त के लक्षण दिखाई पडने लगे परन्तु, असुरराज हिरण्यकश्यपु यह नहीं चाहता था कि उसके परिवार अथवा राज्य में कोई भी ईश्वर भक्त जन्म ले। उसने प्रह्लाद को मारने के लिए तरह-तरह के उपाय किया। परन्तु भगवान् विष्णु द्वारा रक्षित प्रह्लाद का बाल भी बांका न हो सका। अन्त में भगवान विष्णु ने हिरण्यकश्यपु का बध किया और प्रह्लाद विष्णुभगवान के एक महान् भक्त बने।

इन कहानियों से यही निष्कर्ष निकलता है, कि माता की मन: स्थित के अनुसार जन्म से पूर्व ही बालक की शिक्षा आरंभ हो जाती है। जननी केवल भौतिक शरीर को ही पोषण नहीं देती। बल्कि, अपने विचार और भावों के द्वारा शिशु के सूक्ष्म शरीर को भी पोषण प्रदान करती है। इसलिए गर्भधारण के पूर्व यदि माता ने अच्छी साधना की है, तो वह अपने बच्चों को सर्वोत्तम संस्कार प्रदान कर सकती है। यदि माता ने किसी प्रकार की साधना नहीं किया है, तो बच्चों में पड़ने वाले संस्कार उसकी विभिन्न मन:स्थितियों पर निर्भर करेंगे। माता के प्रत्येक भाव, विचार और मन:स्थिति शिशु के मन पर अपनी छाप डालते जायेंगे।

— — — —

बचपन और कुमारावस्था के संस्कार

जन्म के पश्चात् शिशु के विकास की विभिन्न अवस्थाओं में निम्नांकित संस्कार किये जाते हैं-

नामकरणम्, अन्नप्राशनम्, चूणाकरणम्, उपनयनम्, और सम्वर्तनम्,

संस्कार करने के पीछे मुख्यत: तीन उद्देश्य हैं -

१ **मलापनयन** अथवा मल को दूर करना, २. **अतिश्यधान** अर्थात समृद्धिकरण और ३ **न्यूनांगपूरक** अर्थात-कमी को पूरा करना। उदाहरण के लिए जब किसान खेत से गेहूँ लाता है, तो सबसे पहला काम उसमें जो गन्दगी होती है, उसे साफ किया जाता है। इसके बाद उसे अच्छी तरह सुखा कर आटा बनाया जाता है। आटे को और अधिक पौष्टिक बनाने के लिए उसमें विभिन्न प्रकार के विटामिन अथवा अन्य पौष्टिक तत्व मिलाया जाता है। चपाती बनाने के बाद इसके साथ खाने के लिए सब्जी अथवा दाल बनायी जाती है।

संस्कार के माध्यम से मानव व्यक्तित्व में भी ठीक ऐसी ही तीन प्रक्रियें की जाती हैं ये है :--विकृतियों को दूर करना, सद्गुण तथा शैक्षणिक प्रवीणता को बढावा देना और आध्यात्मिक योग्यताओं का विकास करना।

नाम करणम्

किसी शुभ दिन पर वेद मंत्रों के उच्चारण के साथ शिशु को एक नाम दिया जाता है। यह संस्कार जन्म के दसवें, ग्यारहवें, अठारहवें या उन्नीसवें

दिन पर किया जाता है। किसी कारण यदि उपरोक्त दिनों पर यह संस्कार न हो सका, तो सौवें दिन पर किया जाता है। भारत में अधिकंश व्यक्ति अपने बच्चों का नाम किसी न किसी देवी अथवा देवता के अनुरूप रखते हैं। अच्छा और प्ररेक नाम से शिशु स्वयं तो प्रेरित होता ही है, अन्य व्यक्ति जो भी उसके सम्पर्क में आते हैं वे सभी प्रेरणा प्राप्त करते हैं। अपने बच्चों का किसी देवी अथवा देवता का नाम दे कर अनजाने ही आप मंत्र जप का लाभ पाते रहते हैं।

अन्नप्राशनम्

छठे महीने में शिशु को सर्वप्रथम् ठोस आहार दिया जाता है। इस संस्कार के समय भी मंत्रोचारण के साथ हवन किया जाता है। जब अन्न-जो स्वयं परमात्मा का ही एक रूप है, को अभिमंत्रित कर दिया जाता है, तो शरीर और मन को विशेष रूप से पुष्ट करते हुए यह व्यक्ति के जीवन को आध्यात्मिक गुणों से परिपूर्ण कर देता है।

चूणाकरणम्

इस शब्द का अर्थ है समीप लाना, इसके द्वारा बच्चे को गुरु के समीप लाया जाता है। उसे यज्ञोपवीत प्रदान किया जाता है तथा पवित्र गायत्री मंत्र दिया जाता है। इस दीक्षा के बाद उसका दूसरा जन्म होता है। जिसका अभिप्राय है कि इसके बाद से उसके जीवन का एक मात्र लक्ष्य अपने आध्यात्मिक स्वरूप को उद्घाटित करना है।

यज्ञोपवीत का महत्व

पवित्र यज्ञोपवीत तीन तागों से बना होता है। जिसका अर्थ है कि जो भी इस यज्ञोपवीत को धारण करते हैं, वे स्वयं को साधना की उस परम्परा में डाल चुके हैं जो मन, कर्म और वाणी के नियंत्रण से तन-मन और इन्द्रियों पर विजय चाहते हैं। इसके तीन धागे, ईश्वर के सत्य, चित्त और आनन्द स्वरूप के भी परिचायक हैं। आपके जीवन का लक्ष्य अपने सच्चिदानन्द दिव्य स्वरूप की अनुभूति करना है।

पवित्र यज्ञोपवीत धारण करने के साथ ही बालक का प्रवेश ब्रह्मचर्याश्रम में हो जाता है, जो शिक्षा के प्रति गहन भक्ति और गंभीर अनुशासन का प्रतीक है। आत्मसाक्षात्कार के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बालिकाओं को भी गायत्री मंत्र की दीक्षा दी जाती है तथा जीवन को समुन्नत करने के लिए विभिन्न प्रकार की शिक्षायें दी जाती हैं। परन्तु, सामान्य रूप से बालिकाओं द्वारा यज्ञोपवीत धारण करने की परम्परा नहीं है। यज्ञोपवीत निरन्तर आपको अपने आध्यात्मिक आदर्श की याद दिलाता रहता है-"आप यह भौतिक शरीर नहीं हैं। स्वरूपत. आप अमर आत्मन् हैं। आप में अनन्त संभावनायें विद्यमान हैं। तप और साधना का जीवन व्यतीत करते हूए आश्चर्य जनक सफलतायें प्राप्त की जा सकती है।

ब्रह्मचारी को विवेकानन्द, महात्मा गांधी तथा ऐसे ही अन्य महामानवों की जीवनी का अध्ययन करते हुए प्रेरणा लेनी चाहिए।

अपने दैनिक जीवन में ब्रह्मचारी को आसन, प्राणायाम, ध्यान और जप का अभ्यास करना चाहिए। इससे यह आधुनिक जगत् के दबाव से मुक्त होकर नम्रता, भक्ति, निर्भता, और मानसिक शान्ति जैसे दिव्य गुणों को विकसित कर सकता है। उसका जीवन अपने तथा दूसरो के लिए वरदान बन जाता है।

संवर्तनम्

ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्ति पर यह संस्कार किया जाता है। प्राचीन काल में गुरुकुल में शिक्षा दी जाती थी, जहॉ ऋषि-महेर्षि बालकों को विभिन्न प्रकार के ज्ञान दिया करते थे

गुरुकुल के आचार्य वानप्रस्थी हुआ करते थे। जो आत्मसाक्षात्कार जैसे आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अपने जीवन को समर्पित करते थे। इसके साथ-साथ कर्मयोग की भावना से बालकों को पढाया भी करते थे। इससे उनकी चित्तशुद्धि होती थी तथा उन्हें आध्यात्मिक मार्ग पर प्रगति करने में सहायता मिलती थी।

गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को ऐसा बौधिक ज्ञान दिया जाता था जिससे उन्हें व्यावहारिक जीवन जीने में सहायता मिलती थी तथा भौतिक रूप से भी वे उन्नत्त बनते थे। दूसरी ओर, उन्हें वेद शास्त्रों का भी अध्ययन कराया जाता था, जिससे उनका आध्यात्मिक विकास होता था। उनको अपरा (विद्या बौधिक) ज्ञान तथा पराविद्या (उन्नत आध्यात्मिक ज्ञान) दोनों में निपुण बनाया जाता था। इस प्रकार, उनका व्यावहारिक और आध्यात्मिक विकास संभव होता था। इस क्रम में उन्हें गुरुपत्नी के द्वारा मातृप्रेम और वात्सल्य प्राप्त होता था। सभी ब्रह्मचारी उन्हें माता के समान समादर किया करते थे।

समाज सेवा

शिक्षा समाप्त होने पर ब्रह्मचारी अपने गुरु से विशेष आशीर्वाद प्राप्त करते थे। इसके बदले में सभी विद्यार्थी अपने गुरु को दक्षिणा और उपहार दिया करते थे। तब वे गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर समाज का एक क्रियाशील सदस्य बनने के लिए तैयार हो जाते थे।

यह जान लेना आवश्यक है, कि ब्रह्मचारी के गुरुकुल से वापस आने का अभिप्राय यह नहीं होता था कि शिक्षा पूरी हो गई। उसे विविध कार्यों के माध्यम से और अधिक ज्ञान प्राप्त करना होता था। समाज का एक क्रियाशील सदस्य बन कर उसे कोई न कोई व्यवसाय अपनाना होता था और अपने परिवार और समाज में योगदान करना पडता था।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में अनेक दोष हैं। छात्रों को बहुत वर्षों तक शिक्षा लेनी पडती है और इस क्रम में वे अपने परिवार अथवा समाज के लिए व्यावहारिक रूप से कुछ भी नहीं सहयोग देते हैं। प्राचीन आदर्श यह था कि प्रत्येक विद्यार्थी को एक नैतिक-आध्यात्मिक आधार प्रदान किया जाता था तथा उसे ऐसी व्यावहारिक शिक्षा दी जाती थी जिससे वह समाज और परिवार के लिए उपयोगी बन सके। आज के सामाजिक नेताओं को इस तथ्य पर गहरा विचार करके आधुनिक शिक्षा में इसे लाने का प्रयास करना चाहिए।

— ॐ —

विवाह संस्कार

यदि व्यक्ति का विद्यार्थी जीवन अनुशासित रहा है, तब उसका गृहस्थ जीवन भी आनन्दायक और संतुष्ट रहेगा। उसकी बुद्धि परिपक्व होगी। अनुशासनविहीन जीवन बिना नीव वाले भवन के समान होता है।

लक्ष्य भोग नहीं मुक्ति है

हिन्दू धर्म के अनुसार विवाह मानव में विद्यमान इन्द्रिय भोग की वृत्ति की स्वीकृति नहीं देता। सभी जीवों में संतानोत्पत्ति की प्रवृत्ति होती है। किन्तु, मनुष्य होने के नाते आप में मुक्ति प्राप्त करने की क्षमता और संभावनायें हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए वैदिक संस्कृति विवाह संस्कार द्वारा हमारी यौन प्रवृत्ति का गुह्यार्थ बतलाते हुए आवश्यक निर्देष देती है।

यह समझ लेना चाहिए कि यदि पति और पत्नी का यौन सम्बन्ध गुह्य प्रेम उद्घाटित करने का साधन होता है, तब यह उच्चस्तरीय आनन्द का स्रोत बन जाता है। यह गुह्य प्रेम दोनों के मन, हृदय और आत्मा के बीच एकत्व स्थपित कराता है।

भोग वृत्ति अधोगाामी है

आधुनिक युग में बहुत से लोग मुक्त, अनियंत्रित, और स्वछन्द यौन सम्बन्धों को प्रगति की पहचान मानते हैं। लेकिन वास्तविकता ऐसी नहीं है। सच्ची प्रगति एवं मुक्ति अनियंत्रित इन्द्रियों के दासत्व में नहीं है और न तो यह प्रत्येक मनोवेग एवं भोग की प्रवृत्ति की स्वीकृति ही देता है।

जब तक भोग वृत्ति मन में प्रभावी है, तब तक पति-पत्नी के बीच सामंजस्य और धैर्य का अभाव रहता है। जिस क्षण पति या पत्नी में किसी एक की इच्छा की पूर्ति नहीं होती उसी क्षण से निराशा आरंभ हो जाती है और पति या पत्नी या तो विवाह सम्बन्ध से अलग होना चाहते या निरन्तर असंतोष की अवस्था में साथ रहते हैं। प्रत्येक के मन में यह विचार आने लगता है कि वह इससे अच्छी स्थिति में रह सकता था। जिस संस्कृति में भोग की प्रधानता रहती है, वह समाज टूटने लगता है। परिवार का स्थाईत्व समाप्त हो जाता है और इस छिछले सम्बन्ध से उत्पन्न बच्चे अनुशासनहीन एवं खण्डित व्यक्तित्व वाले होते हैं।

जय होम का वैदिक अनुष्ठान

विवाह के समय वैदिक मन्त्रों का उच्चारण किया जाता है ताकि वर-वधू जीवन की बाधाओं पर विजय प्राप्त कर सकें। उन मंत्रों का निष्कर्ष नीचे दिया जा रहा।

"मेरा मन ज्ञान से परिपूर्ण हो। मैं श्रद्धा एवं विचार पूर्वक अपने कर्त्तव्यों का पालन करूं। मेंरा मन दृढ़ हो। मुझे विवेक शक्ति मिले ताकि मैं सत्य को अनुभूत कर सकूँ। मेरी इन्द्रियाँ स्वस्थ एवं मजबूत बने। मेरा जीवन यज्ञ (त्याग) की भावना से परिपूर्ण हो। मेरा जीवन सामवेद यानि शान्ति एवं सामंजस्य के गीतों से परिपूर्ण हो।"

सप्तपदी का वैदिक विधान

हिन्दू परम्परा में वर और वधू को विशेष प्रकार का अनुष्ठान करना होता है। प्रत्येक अनुष्ठान वैदिक मंत्रों के उच्चारण के साथ किया जाता है जिसका गुह्यार्थ होता है। सबसे महत्वपूर्ण अनुष्ठान सप्तपदी है जिसका अर्थ सात कदम चलना है।

वर एवं वधू अग्नि के चारों ओर सात फेरे लगाते हैं। अग्नि को साक्षी मान कर वे एक दूसरे के प्रति प्रेम की पुष्टि करते हैं। वधू पति के लिये

अन्त:प्रज्ञा के सात सोपान

तुरीय

पदार्थाभावना

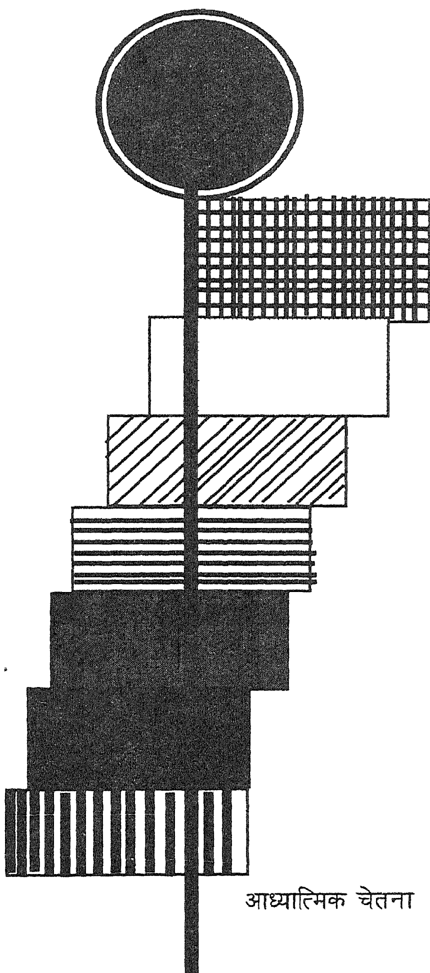
असंसक्ति

सत्वपति

तनुमानसि

विचारणा

शुभेच्श्छसा



चेतना

धन धान्य, शक्ति, सुख, समृद्धि, गाय एवं दूसरे अन्य पशु (जो प्राचीन सम्पति के प्रतीक हैं) और अनुकूल मौसम की कामना करती है। वर सातफेरों के दौरान कहता है कि हमने एक साथ फेरे लगाये हैं, हम लोग अब अभिन्न हैं। हमारा प्रेम चिरस्थायी हो। हम दोनों गहन प्रेम में एकत्व स्थापित करके परिवार, समाज और संसार के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करें।

सातफेरों का रहस्य

अग्नि अन्त:प्रज्ञा जो जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति देती है, का प्रतीक है। वर और वधू को जीवन के आध्यात्मिक लक्ष्य-मुक्ति की याद दिलायी जाती है। अपने इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु ही उनका पाणिग्रहण होता है।

ज्ञान की सात अवस्थायें होती हैं। प्रत्येक फेरा ज्ञान के पथ पर एक-एक अवस्था की प्राप्ति की और अग्रसर होने का प्रतीक है। ज्ञान की सात.अवस्थायें क्रमश: इस प्रकार है-प्रेरणा या शुभेच्छा, चिन्तन या विचारण, वासनाओं का क्षय अर्थात् तनुमनसी, ज्ञानोदय या सत्वपत्ति विरक्ति या असंसक्ति, संसार चक्र की अस्वीकृति या पदार्थाभावना और भावातीत ब्रह्म में स्थित हो जाना यानि तुरीयावस्था।

सफल दाम्पत्य

सफल दाम्पत्य जीवन में पति-पत्नी एक दूसरे की अन्त:शक्ति को विकसित करने के लिये सहयोग देते है। दिव्य ईश्वरीय योजना में दो जीवात्माओं को एक साथ लाया जाता है, ताकि वे जीवन के चारों पुरुषार्थ की प्राप्ति में परस्पर सहयोग करें। ये चार पुरुषार्थ इस प्रकार हैं-नैतिक परिपालन-धर्म, भौतिक सामृद्धि-अर्थ, सुखी पारिवारिक जीवन-काम और मुक्ति-मोक्ष।

आत्मसाक्षात्कार यदि जीवन का लक्ष्य बना दिया जाय तो परिवार में उत्कृष्ट कोटि का प्रेम एवं सामंजस्य उत्पन्न हो जाएगा। यदि इस लक्ष्य से दम्पति विमुख हो जाते हैं, तो पारस्परिक प्रेम भ्रम की गहरी खाई में गिर जाता है और वैवाहिक जीवन तब दोनों को मुक्ति प्रदान करने के बदले, दुख और बंधन का कारण हो जाता है।

बड़े-छोटे का भाव नहीं

पति पत्नी के बीच बड़े-छोटे की भावना नहीं होनी चाहिए। यदि पति निरन्तर अधिनायक बनने के अधिकार की मांग करता है और अपने अहंकार के कारण पत्नी के व्यक्तित्व के विकास में विघ्न डालता है, तो वह धर्म का अनुपालन नहीं कर रहा है।

बहुत सारे परिवार में पति, पत्नी को कठपुतली समझता है और यह उम्मीद करता है कि वह उसी के विचारों के अनुसार व्यवहार करे। यह अधोगति की स्थिति है। तानाशाही और दब्बूपन के इस वातावरण में कोई भी सद्‌गुण

पनप नहीं सकता। जब पति के ऋणात्मक स्वभाव का कभी विरोध नहीं होता है, तब उसका अहंकार समय के साथ बढ़ता जाता है और इसके विपरीत पत्नी की दुर्बलतायें चाटुकारिता में बदलने लगती है।

अत: वैवाहिक जीवन में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का वातावरण बनाना चाहिये जिसमें पति या पत्नी जो कुछ भी सही समझते हों उसकी अभिव्यक्ति में किसी को कोई भय न हो।

ऐसी स्वतंत्रता का वातावरण स्थापित करने के लिए यह आव यक है कि गृहस्थ विनम्रता और दब्बूपन के मध्य मनोवैज्ञानिक भेद को समझे।

किसी विशेष परिस्थिति में बुद्धिमान पति या पत्नी यह जानते हैं कि वे अपनी जगह सही हैं किन्तु, विनम्रता से वे अपना विचार अभिव्यक्त करने के लिए सही समय की प्रतीक्षा करते हैं। इस प्रकार वे अपने विचारों का परित्याग या बुद्धि का अनादर किए बिना पारिवारिक सामंजस्य को बनाये रखने में सफल हो जाते हैं।

अपने वैवाहिक सहभागी की प्रत्येक इच्छा और निर्देश जिनसे आप सहमत नहीं हैं, को आंख बन्द कर स्वीकार और पालन करने से जो सम्बन्ध बनता है उसका आधार सतही होता है। आप अपने विवेक के विपरीत चलकर शान्त नहीं रह सकते। वैवाहिक जीवन में परस्पर स्वतंत्रता का वातावरण होना चाहिए ताकि दोनों का व्यक्तित्व विकसित हो सके और इस अनुकूल वातावरण में ही बच्चे सबसे उत्कृष्ट कोटि के नर और नारी बन सकेंगे।

आदर्श परिवार

आदर्श परिवार वसंत वाटिका के समान होता है। जब आप ऐसे घर में प्रवेश करते हैं तो वहां सामंजस्य और आनन्द का वातावरण पाते हैं। हिन्दू सद्ग्रन्थों के अनुसार आदर्श परिवार निम्नलिखित गुणों से विभूषित रहता है।

१ **आशावादिता**-परिवार का प्रत्येक सदस्य उज्वल भविष्य के लिये आशान्वित रहता है। अज्ञात और अनिश्चित भविष्य के प्रति उनमें आशा होती है। जब व्यक्ति ईश्वर में विश्वास उत्पन्न कर लेता है, तब उसे ज्ञात हो जाता

है कि प्रत्येक स्थिति व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास के लिये ही आती है। इस प्रकार अज्ञात परिस्थितियों से व्यक्ति में रोमांच पैदा होता है। कल क्या होने वाला है यदि यह ठीक-ठीक ज्ञात हो जाये, तो व्यक्ति का जीवन नीरस बन जायेगा। स्वस्थ पारिवारिक जीवन में भविष्य के प्रति लोग आशान्वित रहते हैं।

२. **प्रतीक्षा**-यह सद्‌गुण धैर्य और अध्यवसाय का समिश्रण है। जो भी परियोजना आप लेते हैं, उसको पूरा करने के लिये आप अपना कर्तव्य करके धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करते हैं। इस प्रकार ईश्वरीय सत्ता आपको बड़ी सफलता की ओर पथ निर्देशित करती है।

३. **सत्संग**-आप अपने घर अच्छे मित्रों और शुभचिन्तकों को बुलाते और दुर्जनों की संगति से बचते हैं।

इसके अतिरिक्त, प्रत्येक दिन एक निश्चित समय पर समस्त परिवार सत्संग के लिए एकत्रित होता है। इस समय आप अपने पड़ोसियों को भी आमंत्रित कर सकते हैं। सत्संग में प्रार्थना, कीर्तन, मंत्रजाप, रामायण महाभारत, भगवद् गीता, बाईबिल या किसी भी सद्ग्रन्थ का सुनियोजित ढंग से अध्ययन किया जाता है। सत्संग का समापन आरती एवं प्रसादवितरण से किया जा सकता है।

४. **सद्‌कर्म**-आप अपने सम्पर्क के लोगों के लिये सद्‌कार्य करते हैं। आदर्श परिवार में प्रत्येक सदस्य को सद्‌कर्मों की महत्ता सिखायी जाती है।

५. **दान**-परोपकार के लिये उदारता पूर्वक दान दिया जाता है। आप अपना धन, ज्ञान, और योग्यता को दूसरों की भलाई के लिये बांट सकते हैं। आपकी उदार भावनायें आपकी भौतिक उपलब्धियों पर निर्भर नहीं है। आप गरीब हो सकते हैं फिर भी, निराशा और अँधेरे में घिरे मानवता में आशा का दीप प्रज्वलित कर सकते हैं। आप दूसरों में धैर्य और साहस का संचार कर सकते हैं। ज्ञान दान सबसे उत्तम दान है।

६. **आतिथ्य**-आप अपने घर आये अतिथियों के प्रति सत्कारशील बनिये। प्रत्येकं अतिथि के रुप में आप ईश्वर की पूजा कर रहे हैं

योग की भावना

अपने दैनिक जीवन के छोटे बडे सभी कर्तव्यों को कर्मयोग की भावना से सम्पन्न कीजिये। प्रत्येक कर्म को ईश्वर पूजा बनाइये। आपका कर्म चाहे बच्चों की देखरेख, घर की सजावट, पड़ोसियों से सामंजस्य अथवा किसी भी प्रकार का क्यों न हो, उन्हें सदैव कर्मयोग की भावना से ही पूरा करना चाहिए। अपने जीवन को ईश्वर की पूजा का एक महान् सुअवसर के रूप में देखिये। परस्पर मधुर सम्बन्ध का यही रहस्य है। ऐसे सम्बन्ध में ही शान्ति, समृद्धि और सामंजस्य बना रहता है।

एक दूसरे में ईश्वर दर्शन

एक दूसरे में ईश्वर का दर्शन करें। प्रत्येक पति को अपनी पत्नी में विद्यमान देवी स्वरूप का अवलोकन एवं अराधना करनी चाहिए। उसी प्रकार प्रत्येक पत्नी अपने पति में विद्यमान (राम, कृष्ण रूपी) ईश्वर स्वरूप की अराधना करें। वेदान्तवाणी है "यत्र नारी पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" अर्थात् जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं।

एक दूसरे की पूजा का तात्पर्य प्रत्येक व्यक्ति में वर्तमान आत्मा ब्राह्मन के प्रति गहन श्रद्धा है। ऐसे भाव के बीच आदर्श प्रेम विकसित होता है। सेवा, प्रेम, त्याग, धैर्य, सहयोग और करुणा से परिपूर्ण जीवन कठिन परिस्थितियों से विनष्ट नहीं होता। इसके विपरीत, चन्द्रमा के समान प्रतिकूलता रूपी बादल के छटने से और अधिक दीप्तिमान होकर चमकता है।

एक दूसरे में ईश्वर का अवलोकन और पूजा की भावना से एक सुरक्षित दाम्पत्य जीवन का सूत्रपात होता है। इस प्रकार के वातावरण में असामंजस्यता का भय नहीं होता। इस प्रकार का परिवार ऐसे वृक्ष के समान है जो हवा के तेज झोके से आन्दोलित भले ही हो, किन्तु टूटता नहीं है। पति एवं पत्नी खुल कर झगड सकते है; परन्तु, अपने एकत्व एवं प्रेम रूपी नींव के झकझोरे जाने के भय से ऊपर होकर वे अपने विचार को अभिव्यक्त कर सकते हैं।

हिन्दू आदर्श

हिन्दू आदर्श के अनुसार पति-पत्नी का सम्बन्ध एक दूसरे के प्रति सच्चाई और विश्वास की पुष्टि हेतु ही होता है। इस प्रकार का योग निष्ठा, एकत्व, परिवार का आध्यात्मिक कल्याण और सुख की वृद्धि करता है। हिन्दू आदर्श के अनुसार विवाह सम्बन्ध चिरस्थायी होता है। पति-पत्नी एक दूसरे के आजीवन सहयोगी होते हैं। मृत्यु के समय यदि कर्म बन्धन समाप्त नहीं हुआ, तो वे भविष्य में होने वाले अनेक जन्मों तक एक दूसरे के सहयोगी बने रहने की कामना करते हैं।

फिर भी, किसी असमान्य वैवाहिक सम्बन्धों में हिन्दू परम्परा आपत् धर्म की स्वीकृति देता है। कुछ अपवादस्वरूप दु:खद् परिस्थितियों में उनका कर्तव्य क्या है ? यदि पति-पत्नी एक दूसरे से बिल्कुल मेल नहीं खाते या पति, पत्नी को पीटता या पत्नी, पति को अकारण ही यातना देती हो, तो इस स्थिति में ऐसे सम्बन्धों से कोई भौतिक या आध्यात्मिक उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती। लेकिन यर्थात् तो यह है कि इस विशेष परिस्थिति में उनका अलग रहना ही उचित है, ताकि वे निरन्तर द्वन्द्वों, मानसिक यंत्रणाओं और अधोगति से मुक्त जीवन जी सकें।

किन्तु, इसका तात्पर्य यह नहीं कि व्यक्ति अपनी सनक से निर्देशित होकर बार-बार विवाह और तलाक का मार्ग अपनाता रहे। वैवाहिक सम्बन्ध केवल कुछ बाधाओं के कारण नहीं तोड़ना चाहिये। इसके विपरीत, परम्परागत गहन प्रेम के द्वारा इन तुच्छ बाधाओं से ऊपर होने का प्रयास करना चाहिये। जीवन के आध्यात्मिक उद्देश्यों को अध्यान में रखते हुए आपसी प्रेम, समझदारी, आत्मनियंत्रण, सामंजस्य एवं त्याग के द्वारा सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये ताकि वैवाहिक जीवन में स्थायित्व बना रहे।

प्रत्येक स्थिति आपके विकास में सहयोगी है

एक संत थे जिनकी पत्नी झगड़ालू थी। वे जो कुछ भी करते हमेशा घर में अशान्ति ही बनी रहती। पत्नी दोष दर्शन करती जिसके लिये वे ईश्वर को धन्यवाद देते-'हे ईश्वर, तुम कितने महान् हो। तुमने मुझे ऐसी पत्नी दी जो सदैव मेरे हृदय में वैराग्य प्रेरित करती रहती है। वह मुझे हमेशा याद दिलाती है कि संसार अपूर्ण है। इस वैराग्य प्राप्ति हेतु किसी आश्रम में नहीं जाना पड़ता बल्कि, मुझे यही मिल जाता है।''

सुकरात की पत्नी भी इसी तरह की थी। एक दिन जब वे अपने शिष्यों से बातें कर रहे थे, तो वह चिल्लाते जा रही थी। उन्होंने शिष्यों से कहा "गरजने वाले बादल शायद ही बरसते हैं।'' कुछ देर बाद उसने कूड़ा करकट उनके सिर पर डाल दिया। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा-अच्छा कभी-कभी गरजने वाले बादल बरस भी जाते हैं। वे अपने वैवाहिक जीवन की घटनाओं को वैराग्य की दृष्टि से देखते थे।

एक दूसरे संत थे जिनकी पत्नी बहुत ही मधुर स्वभाव की थी और पति को प्रसन्न रखने में तत्पर रहती थी। वे ईश्वर को धन्यवाद देते हुए कहते थे-हे ईश्वर, तुम कितने दयालु हो। तुमने मुझे ऐसी पत्नी दी जो मेरे अनुकूल और प्रिय है। वह मुझे हमेशा प्रोत्साहित करती रहती है। सभी चिन्ताओं से मुक्त रखती है, जिससे मैं अपनी समस्त शक्ति तुम पर समर्पित कर पाता हूँ।''

इन संतों की वैराग्य दृष्टि आपको उपदेश देती है कि जब आप आत्मसाक्षात्कार के लक्ष्य की ओर चल रहे हों, तब जीवन की प्रत्येक स्थिति को उस लक्ष्य की प्राप्ति में सहयोगी बनाइए। इसके विपरीत, आपको मन की इस प्रबल अहंकारिक धारणा को रोकना होगा जो यह सोचता है कि यदि मेरा वैवाहिक सम्बन्ध किसी और से हुआ होता तो मेरी स्थिति अच्छी होती। यह बहुत बडा भ्रम है। आपके जीवन साथी का व्यक्तित्व चाहे जैसा भी है, यह सम्बंध कुछ अर्थ अवश्य रखता है। आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि द्वारा आप अपने पति या पत्नी में महान् परिवर्तन ला सकते हैं। दिव्य प्रेम सभी बाधाओं पर विजय प्राप्त करता है।

मानवीय सम्बन्धों में सामंजस्य

मानवीय विकास और समृद्धि घर एवं समाज में स्थित सामंजस्य पर निर्भर है। जिस प्रकार कमल रात्रि की सुनसान घड़ी में विकसित होता है, उसी प्रकार, व्यक्ति में वर्तमान दिव्य ईश्वरीय गुण, शान्ति एवं सामंजस्य के मधुर क्षणों में ही विकसित होते हैं।

यह संसार परम सत्ता की अभिव्यक्ति है। सभी विभिन्नताओं के मूल में एकत्व विद्यमान है। जिस प्रकार, असंख्य तरंगों के मूल में एक ही सागर है, उसी प्रकार, अनगिनत प्राणियों को धारण करने वाला सभी हृदयों का स्वामी एक ही शाश्वत ब्रह्म है। सभी मनुष्यों में अन्तर्निहित आत्मा एक ही है।

अत· दूसरे व्यक्ति की रूचि और स्वभाव में कितनी भी भिन्नता क्यों न हो, हमारा उनके प्रति व्यवहार एकात्मता की भावना पर आधारित होना चाहिये।

ईश्वर, प्रार्थना से उतना प्रसन्न नहीं होते, जितना उन सद्कर्मों से जिसके फलस्वरूप परिवार और समाज में सुख और सामंजस्य की स्थापना होती है। एकता और समता के वातावरण से परिपूर्ण जीवन में घृणा की अपेक्षा प्रेम, अधैर्य के बदले क्षमा, दबाव की जगह सहमति का समावेश होता है।

मानवीय सम्बन्ध प्राय: सतही होते हैं। एक बार एक बहरा व्यक्ति अपने मित्र को अस्पताल में देखने गया। उसका मित्र गंभीर रूप से बीमार था और अपनी अन्तिम घड़ी गिन रहा था। बहरा व्यक्ति जानता था कि वह अपने मित्र की बात नहीं सुन सकता है किन्तु, वह यह नहीं चाहता था कि उसके

मित्र को ज्ञात हो जाय कि वह बहरा हो चुका है। अतः उसने मिलने से पूर्व ही अपने मित्र के साथ होने वाली बातचीत की योजना बना डाली, जिससे उसके बीमार मित्र को कुछ सान्त्वना मिल सके।

उसने पूछा 'हे मित्र, क्या तुम ठीक ठाक हो? बीमार मित्र ने जवाब दिया "मैं दिन प्रतिदिन कमजोर होता जा रहा हूँ।'' बहरे व्यक्ति ने सोचा, उसका मित्र अब ठीक हो रहा है और कहा-"हे ईश्वर, तुम्हें धन्यवाद है। इस समाचार से मुझे अति प्रसन्नता हुई।'' बीमार व्यक्ति बुरी तरह आहत हो गया। उसने सोचा यह व्यक्ति मुझे और ज्यादा बीमार देखना चाहता है। वह नाराज हो गया।

बहरे ने फिर पूछा 'हे मित्र, तुमने आज क्या खाया है ? मरीज ने गुस्से में जवाब दिया 'जहर'।'' बहरे ने कहा-"आशा है तुम इसे अच्छी तरह पचा सकोगे।'' बीमार व्यक्ति अत्यन्त क्रोधित होकर अपने मित्र से कहा-"तुम तुरन्त वापस चले जाओ।'' बहरा व्यक्ति अपने मित्र की अवस्था से अनभिज्ञ, प्रसन्नचित होकर वापस चला आया।

अपने अहंकारिक मन के कोलाहल में व्यक्ति दूसरों की भावनाओं को समझ नहीं पाता है। ऐसे लोग दूसरों की समस्याओं के प्रति बहरे होते हैं। इस प्रकार दूसरों के प्रति असुग्राहकता के कारण हमारे दैनिक जीवन के सम्बन्धों में विभिन्न प्रकार की असामन्जस्यता व्याप्त हो जाती है। जब परिवार में सामन्जस्य की शीतल वायु चलती है, तो सभी लोग स्वास्थ्य लाभ करते हैं और उनके कड़वाहट रूपी घाव धीरे-धीरे भर जाते हैं।

अनुकूल एवं समन्वित बनें

अनुकूल एवं समन्वित बनिये। अहंकार, घमण्ड या उदण्डता को विकसित नहीं होने दें। थोड़ी सी विनम्रता और सहनशीलता महान् उपलब्धि प्रदान कर सकती है। महाभारत में एक कहानी है जो इस धारणा की पुष्टि करती है। एक बार सागर ने गंगा नदी से पूछा-'हे देवी, तुम सदैव शक्तिशाली वृक्षों को लाकर मुझे देती हो लेकिन, अपने किनारे उगने वाली छोटी घास को कभी नहीं लाती क्यों ?''

देवी गंगा ने कहा-"वृक्ष झुकना नहीं जानते और कठोर हृदय के भी होते हैं। अत: वे मेरे द्वारा उखाडे जाते हैं। लेकिन, मेरे तट की छोटी मुलायम घास विनम्रता से वातावरण के अनुसार अपने को अनुकूल बना लेती हैं। जब मेरी तीव्र धारा उनके ऊपर से गुजरती है तो वे झुक जाती हैं और जब बाढ समाप्त हो जाती है तो पुन: ऊपर उठ जाती हैं। अत: वे अपनी अनुकूलनशीलता और विनम्रता की वजह से वर्बाद नहीं होती।''

इसी प्रकार जो व्यक्ति अपने आस पास के लोगों के साथ अनुकूलन शीलता और समन्वय की कला नहीं सीखते वे प्रतिकूल परिस्थिति के आने पर टूट जाते हैं। किन्तु, जो अनुकूल बनना जानते हैं, वे सदैव अप्रभावित रहते हैं। अत: छोटी-छोटी बातों के कारण तनाव उत्पन्न न कीजिए। जीवन क्षणिक हैं। ईश्वर प्रदत्त अनमोल जीवन और इसकी सम्भावनाओं को अपनी चेतना के विस्तार के लिये प्रयुक्त कीजिए।

ॠणात्मक परिकल्पनाओं को समाप्त करें

कभी-कभी मन में उठने वाली ॠणात्मक परिकल्पना अशान्ति और विषमता का कारण बन जाती है। परिकल्पना की शक्ति से सम्बन्धित श्री रामकृष्ण परमहंस एक कथा कहते थे :-

"सड़क के किनारे एक व्यक्ति लेटा हुआ था। उसके पास से एक चोर गुजरा। उसने सोचा-"लगता है इसने रात में कहीं डाका डाला है और चोरी का सामान इतना भारी था कि उठा नहीं सका और थक गया है।'' जब उसके पास से एक शराबी निकला तो उसने बुद-बुदाया-"इसने बहुत अधिक शराब पी ली है।'' उसी समय एक सन्त उसके समीप से गुजरे। उसे सड़क के किनारे पडे देख सोचने लगे-"यह व्यक्ति परमात्मचिन्तन में इतना लीन है कि इसकी शारीरिक चेतना समाप्त हो गई है। आह ! कैसी ऊँची स्थिति है।''

इसी प्रकार व्यक्ति अपने आन्तरिक विचार और परिकल्पना के अनुसार ही वाह्य परिस्थितियों को देखता और धारणा बनाता है। परिकल्पना की परिसीमा से ऊपर होकर सभी चीजों को ठीक उसी रूप में देखने का प्रयास

करें जिसमें वे वस्तुत: हैं। यदि आपको कोई प्रणाम नहीं करता तो आप यह न सोच लें कि वह आपका शत्रु बन गया है। आपको थोड़ी बहुत ठंड लग गयी है तो यह नहीं सोच लें कि आपको निमोनिया हो गया है। यदि पति-पत्नी के बीच कुछ तनाव आ गये हैं, तो ऐसा नहीं सोच लें कि अब आपके सम्बन्धों में सामन्जस्य और मधुरता आ ही नहीं सकती। आनन्द पूर्वक रहने के लिए ऋृणात्मक परिकल्पनाओं को रोकिये।

सबकी वास्तविकता का आधार ईश्वर है

अनुभव कीजिये कि सभी मानवीय सम्बन्ध पूर्वकृत कर्म के परिणाम हैं। दूसरों से बहुत आशा नहीं रखें। कोई भी सम्बन्ध स्थाई और सुरक्षित नहीं है। सांसारिक प्रपंच के इस तूफान में परमात्मा ही चट्टान की तरह सुदृढ़ पर्वत शिला हैं। सबों में विद्यमान ईश्वर से प्रेम कीजिए। सच्चा प्रेम आसक्ति और मोह से सर्वथा भिन्न है। अपने सम्बन्धियों से प्रेम कीजिये। परन्तु, उनसे आसक्त न होइये। आसक्ति ही चिन्ता, दुख और निराशा का कारण है। सबों में विद्यमान परमात्मा से प्रेम कीजिए। सबों में वर्तमान ईश्वर की सेवा कीजिए। चूँकि, सभी प्राणियों में परमेश्वर है, अत:, कटु बचन बोलकर किसी के दिल को दु:खी नहीं बनाइये। मन, वचन और कर्म से किसी को कष्ट नहीं दीजिए। चाहे कोई दूसरा व्यक्ति कितना भी शत्रुवत् व्यवहार क्यों न करे आप उसे किसी भी प्रकार दु:ख नहीं दीजिए। यही अहिंसा का अभ्यास है।

सांसारिकता के अस्पमाल में

राग-द्वेष, लोभ और अहंकार के प्रभाव में आकर जो भी गलत कार्य करते हैं वे सभी रोगी हैं। यदि आप उन्हें किसी प्रकार से हानि पहुँचायेंगे अथवा प्रताड़ित करेंगे तो इससे उनकी समस्यायें नहीं सुलझेंगी। रोग को दूर करने के लिए रोगी को मार देना सही मार्ग नहीं है। इसी प्रकार क्रूरता, घृणा, अहंकार और ईर्ष्या कुछ व्यक्तियों के रोग हैं। इन्हें किसी प्रकार से हानि पहुँचाने के बदले इन रोगों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

बहुत बार ऐसा देखा गया है कि दूसरों को उपदेश देने के लिए लोग बहुत उत्सुक रहते हैं। परन्तु, दूसरों को सलाह देना एक बहुत बड़ी कला

है। किसी की भी गलत धारणा और विचार करने के ढ़ंग को छोड़ने के लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिये। इसके विपरीत प्रेम पूर्वक सही मार्ग पर चलने के लिए उन्हें विश्वास में लेकर राजी करना चाहिए। सर्वप्रथम आप स्वयं एक उदाहरण प्रस्तुत करें और दूसरों के लिए प्रेरणा स्रोत बनें।

बच्चों के पालन पोषण में सामंजस्य

अत्यधिक आसक्ति, मोह और लगाव के कारण अपने बच्चों को बर्बाद नहीं करें। बच्चे आपके खेलने के लिए खिलौने नहीं हैं। वे जीवात्मा हैं। मानव व्यक्तित्व के रूप में अपने आध्यात्मिक विकास यात्रा के गहरे मूल्यों को समझने के लिये, आवश्यक आध्यात्मिक अध्ययन के अनुकूल वातावरण प्रदान करना आपका कर्तव्य है।

बच्चों के ठीक-ठीक विकास के लिए प्रेम और दृढता दोनों आवश्यक है। उन्हें इस प्रकार प्रशिक्षित करें कि वे उदार हृदय बनकर मानवता की सेवा कर सकें। इस प्रकार ईश्वर साक्षात्कार करने की प्रेरणा उनमें उत्पन्न होंगी।

पति-पत्नी में सामंजस्य लाइए।
अभिभावक-संतान में सामंजस्य लाइए।
विभिन्न सम्बन्धों में सामंजस्य लाइए।
मित्र-मित्र के बीच सामंजस्य लाइए।
राष्ट्रों के मध्य सामंजस्य लाइए।
तत्वों के बीच सामंजस्य लाइए।
पृथ्वी-आकाश में सामंजस्य लाइए।
हर जगह सामंजस्य का अनुभव करें !

परमात्मा आपको सामंजस्य और शान्ति प्रदान करें !

यज्ञ और तप

आप यह अच्छी तरह समझ लें, कि आध्यात्मिक मार्ग
में प्रगति करने के लिये जिस तप की आवश्यकता
होती है, उसके लिये गृहस्थाश्रम सर्वश्रेष्ठ
अवसर तथा क्षेत्र प्रदान करता है। यह
आपके दृष्टि-कोण पर निर्भर करता है।
ज्योंही आपकी दृष्टि भोग से हट
कर मोक्ष में लग जाती है, वैसे ही
आपका जीवन सर्वोच्च उपलब्धि
प्राप्त करने के लिये प्रार्थना
और तपस्या की सतत
सरिता बन जाता है।

साधना से सिद्धि

गृहस्थ आश्रम ही समाज का मेरूदण्ड है। अन्य तीनों आश्रम ब्रह्मचर्य, (विद्यार्थी), वानप्रस्थ (निवृत) और सन्यास (पूर्ण त्याग), गृहस्थ आश्रम पर ही निर्भर रहते हैं।

यदि गृहस्थ अनुशासित नहीं हो, तो समाज को अनुशासित विद्यार्थी नहीं मिलेगा। समाज में परिपक्व व्यस्क नहीं रह जायेंगे जो दूसरों को दिशा निर्देश कर सकें। इसके अतिरिक्त समाज में आध्यात्मिक गुरुओं का भी अभाव हो जाएगा। अत: गृहस्थ आश्रम की जिम्मेवारियाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

कौशिक ब्रह्मण की कथा

सद्ग्रन्थों में गृहस्थ आश्रम को जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि प्राप्त करने के प्रशिक्षण स्थल के रूप में गौरवान्वित किया गया है। गृहस्थ आश्रम गहन साधना के अभ्यास का सुअवसर है। महाभारत में कौशिक नाम के एक ब्रह्मण की कहानी आती है। जो जंगल में तीब्र साधना किया करते थे। एक दिन जब वे ध्यान की गहराई में थे तो एक चिड़िया ने उनके सिर पर बीट कर दिया जिसके फलस्वरूप वे विचलित हो उठे। उन्होंने क्रोध से चिड़िया की ओर देखा जो तत्काल जल कर राख हो गयी। कठिन साधना के फलस्वरूप उन्हें यह सिद्धि प्राप्त हुई थी जिसकी वजह से उन्होंने चिड़िया को विनष्ट कर दिया। चिड़िया की यह गति देखकर उनके मन में आध्यात्मिक अभिमान पैदा हो गया। उन्होंने सोचा कि अब साधना में पूर्णता मिल गयी है।

कुछ समय बाद वे भिक्षाटन के लिये नजदीक के गांव में गये और एक

दरवाजे पर दस्तक दिया। एक स्त्री बाहर आई और उसने कहा हे ब्रह्मण कृप्या आप प्रतीक्षा करें। मैं आपको कुछ दूँगी।' इतना कह कर वह घर में चली गयी और गृहस्थी के कार्यों में कुछ इस प्रकार उलझ गयी कि दरवाजे पर इन्तजार करते सन्यासी का उसे ख्याल ही नहीं रहा। कुछ समय बाद उसका पति घर आया और वह अपने पति की देखभाल में व्यस्त हो गयी। उसे अचानक दरवाजे पर खड़े सन्यासी का ध्यान आया। उसने विलम्ब के लिये पश्चाताप किया और झट कुछ भोजन लाकर बोली-"आप कृप्या मुझे माफ कर दें। मैंने आपकी सेवा में इतना विलम्ब कर दिया।" ब्राह्मण ने उसकी ओर क्रोध से देखा। तब उस स्त्री ने कहा-ब्रह्मण, कृप्या आप यह न समझें कि मैं वह चिड़िया हूँ। आप मुझे उसकी तरह जला नहीं सकते।"

कौशिक ब्रह्मण ने आश्चर्य से पूछा-"उस दुर्घटना की जानकारी आपको कैसे हुई ? उस समय तो वहाँ कोई नहीं था।" उसने जवाब दिया-"अपने परिवार के प्रति जिम्मेवारियों के निर्वाह करने से यह विशेष सिद्धि मिली है। कौशिक ब्रह्मण ने पूछा यह कैसे सम्भव है कि बिना कठोर साधना के आराम से घर में रहते हुए एक गृहस्थ को सिद्धि मिल जाय ? आपने किसी तप का अभ्यास नहीं किया है, फिर भी यह बड़ा आश्चर्य है कि जंगल में मेरे साथ जो हुआ उसके बारे में आपको पूरी जानकारी है।"

स्त्री ने जवाब दिया "मेरे पास अब समय नहीं है। मुझे बहुत काम करना है। आप एक आध्यात्मिक व्यक्ति हैं, कृप्या धर्मव्याधा नामक एक कसाई के पास जाइये। वह आपको सब कुछ बता देगा।"

अत: उत्सुकतावश ब्रह्मण लम्बी यात्रा तय करके उस ग्राम में पहुँचे जहॉ कसाई रहता था। उन्हें यह कौतूहल हो रहा था कि एक नीच वर्ग के कसाई से वे कैसे और क्या सीख सकेंगे ?

उस गाँव में पहुँच कर उन्होंने देखा कि धर्मव्याधा माँस तौलने और बेचने में व्यस्त था। व्याधा ने उन्हें दूर से देखकर कहा-'हे संत, मुझे मालूम है कि किसने आपको यहाँ भेजा है। कृप्या आप प्रतीक्षा करें।' अपना कार्य समाप्त करके वह ब्रह्मण को अपने घर ले गया और कुछ आध्यात्मिक शिक्षा

दी। उसने बताया कि साधना का तात्पर्य सिर्फ कुछ योगाभ्यास ही नहीं है। एक गृहस्थ को अपने दैनिक जीवन की सारी अपेक्षाओं के साथ समन्वय स्थापित करना पड़ता है। इस प्रकार वह कठोर तपका अभ्यास करता है। कठिन परिस्थितियों में भी उसे अपने कर्तव्य का निर्वाह करना होता है। इससे उसे कठोर साधना करने की योग्यता प्रांप्त हो जाती है।

यदि कोई ब्रह्मचारी एक रात जग कर कुछ साधनायें कर लेता है, तो वह इतना गर्व करने लगता है मानों कोई बहुत बड़ी तपस्या कर ली हो। गृहस्थ को कभी-कभी कई-कई रातें जाग कर बितानी पड़ती है। रात में बच्चे के रोने के कारण, परिवार के किसी सदस्य की बीमारी के कारण अथवा छत से टपकने वाली बूॅदों को रोकने में लगे रहने के कारण, उसे रात-रात भर जागना पड़ता है। फिर भी, उसके मन में तप करने का कोई अभिमान नहीं उत्पन्न होता।

इसलिये, आप यह अच्छी तरह समझ लें कि आध्यात्मिक मार्ग पर प्रगति करने के लिये जिस तप की आवश्यकता होती है, उसके लिये गृहस्थाश्रम सर्वश्रेष्ठ अवसर तथा क्षेत्र प्रदान करता है। यह आपके दृष्टि कोण पर निर्भर करता है। ज्यों ही आपकी दृष्टि भोग से हट कर मोक्ष में लग जाती है, वैसे ही आपका जीवन सर्वोच्च उपलब्धि प्राप्त करने के लिये प्रार्थना और तपस्या की सतत सरिता बन जाता है।

आप के दृष्टिकोण में जब परिवर्तन आ जायेगा तो आप साधनामय जीवन और गृहस्थाश्रम में कोई विरोध नहीं अनुभव करेंगे। अधिकांश गृहस्थी यह सोचते है, कि वे गृहस्थाश्रम मे रहते है। अत उनके लिये गहन आध्यात्मिक जीवन तथा साधना का अनुपालन करना संभव नहीं है। बहुत सारे लोग यह भी सोंचते हैं, कि आधुनिक जीवन की भाग-दौड़, तनाव तथा संघर्ष भरी जिन्दगी में योगाभ्यास करने का अवसर ही नहीं है। "गृहस्थियों को मुक्ति कैसे मिल सकती है ? वे कहते हैं 'यदि मैं गृहस्थ नहीं होता तो अपनी सारी शक्ति एकांत जंगल मे रहकर ध्यान तथा योग साधना में लगा देता।' परन्तु, यह एक भ्रामक धारणा है। इसमें कोई सच्चाई नहीं है।

सही दृष्टि कोण से सम्पादित सारे कार्य ईश्वर साक्षात्कार के उद्देश्य पूर्ति के लिये की गई साधना है। यदि गृहस्थ अपने कर्तव्यों का पालन श्रद्धा, भक्ति, दूरदर्शिता और सहि दृष्टिकोण से करता है, तो आत्मिक उन्नति करने के लिये उन सभी सन्यासी और ब्रह्मचारियों से कहीं अच्छी स्थिति में होता है, जिन्होंने भावनात्मक कारणों से गृहस्थाश्रम का त्याग किया है। परिपक्व चिन्तन तथा वैराग्य के अभाव में जिन लोगों ने सन्यास का मार्ग चुना है, उनकी तुलना में एक ईमानदार, निष्कपट तथा आत्मनिरीक्षक गृहस्थी, अधिक आत्मिक उन्नति कर सकता है।

किसी आध्यात्मिक केन्द्र में रहकर कुछ सेवा करने के पश्चात् आप ऐसा अनुभव कर सकते हैं कि आपने कोई बहुत बडी उपलब्धि कर ली है। किसी आश्रम में रहने वाला एक सन्यासी वेदान्त की कुछ पुस्तकें पढ़ कर तथा थोडी बहुत योग क्रियाओं के अभ्यास के बाद अनुभव कर सकता है, कि उसने ऊँची अवस्था प्राप्त कर ली है। उसने काम, क्रोध, लोभ, वासना जैसे विचारों को जीत लिया है। उसे मनोजय प्राप्त हो गया है। वह दूसरों को हीनदृष्टि से देखने लगता है। उसके आध्यात्मिक विकास में यह अभिमान सबसे बड़ा अवरोध बन जाता है।

दूसरी ओर गृहस्थों को ऐसी परिस्थितियों में रहना पड़ता है जिसमें उसे हर दिन विभिन्न प्राकर की परीक्षाओं से गुजरना होता है। वह अपने काम क्रोध, वासना पर नियंत्रण की जाँच कर सकता है। इसलिये, उनमें उपरोक्त प्रकार का आध्यात्मिक अभिमान उत्पन्न होने की संभावना नहीं होती। यदि किसी दिन प्रातः प्रार्थना के पश्चात् कोई गृहस्थ यह अभिमान कर लेता है कि उसने क्रोध जैसे दुर्गुण पर विजय कर लिया है, तो शाम होते-होते उसे अपने सम्पर्क के लोगों के साथ व्यवहार में इस प्रकार कार्य करना होता है कि उसके धैर्य की सीमा के टूटने के साथ ही उसके क्रोध पर विजय कर लेने का अभिमान भी चूर-चूर हो जाता है।

शास्त्रों में कई आत्मज्ञानी गृहस्थों का उदाहरण दिया गया है। जनक एक गृहस्थी और महान् राजा होने के साथ पूर्ण ज्ञानी संत थे।

इस प्रकार, यह जान लें कि प्रत्येक आश्रम-ब्रह्मचारी, गृहस्थ इत्यादि की अपनी महत्ता और गरिमा है और इनमें से प्रत्येक के द्वारा सर्वोच्च लक्ष्य को

प्राप्त किया जा सकता है। जिस भी परिस्थिति में आप आज हैं, वे आपके कर्मों के कारण उत्पन्न हुई है और इसका आधार ईश्वरीय योजना है। ईश्वर की अनन्त बुद्धिमत्ता इसके पीछे है। इसलिये, अपनी परिस्थितियों को दोष नहीं दीजिए। परिस्थितियों को दोषी ठहरा कर आप कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते। इसके विपरीत, यदि आप तनाव रहित होकर अपनी परिस्थितियों का रचनात्मक उपयोग करने की कला सीख लेंगे, तो विषम परिस्थितियों से ही आध्यात्मिक उद्देश्य की पूर्ति के लिये नवीन संभावनायें उत्पन्न होने लगेंगी। ये सभी आपकी साधना का एक अंग बन कर आपको आत्मिक उपलब्धि प्रदान करेंगी।

आधुनिक युग में गृहस्थ की तपस्यायें

आधुनिक युग की समस्याओं को परिपक्व तथा संतुलित मन के द्वारा सुलझाना होगा। ऐसा मन रुढ़वादिता से ग्रस्त नहीं होता। इसके विपरीत, वह धर्म के सच्चे स्वरूप को समझने के लिये सतत् तैयार रहता है।

दैनिक जीवन में सम्पूर्ण योग को अपनाइए

यदि आप हिन्दू धर्म का सारतत्व को ठीक-ठीक अल्प समय में ही समझना चाहते हैं, तो श्रीमद्भगवद्गीता का अध्ययन कीजिये। इसमें सर्वश्रेष्ठ ढंग से मार्ग दर्शन किया गया है। गीता यह शिक्षा देती है, कि आपके दैनिक जीवन का चाहे जो भी कर्तव्य है, उसे ईश्वर की आराधना मान कर, पूरी निष्ठा और ईमानदारी से पूरा करना चाहिए। ऐसा करने से आपकी चित्त शुद्धि होती है। मन के मैल समाप्त होते हैं।

धीरे-धीरे आप काम, क्रोध, लोभ, अहंकार और निम्न मन की अन्य विकृतियों से छूटकारा पा लेते हैं।

इस प्रकार, अपने दैनिक कार्यों के सम्पादन से आप में ईश्वर भक्ति विकसित होती है। भक्ति से आपको मानसिक शांति की प्राप्ति होती है। आप ध्यान में प्रगति करने लगते हैं। ध्यान से ज्ञान का उदय होता है, जिससे आप अनुभव करते हैं-"मैं यह नश्वर व्यक्तित्व नहीं। वरन् अमर आत्मन् हूँ।" इस प्रकार, आपके दैनिक जीवन में कर्मयोग अपने कर्तव्यों के पालन द्वारा,

भक्तियोग-ईश्वरार्पण भावना के विकास द्वारा, ध्यान योग मन की वृत्तियों के नियंत्रण द्वारा, तथा ज्ञानयोग-अपने यथार्थ स्वरुप के चिंतन द्वारा का निरन्तर अभ्यास होते रहना चाहिए।

ईश्वराधना की भावना बनाये रखें

जब पति यह अनुभव करता है कि पत्नी के रूप में देवी की आराधना हो रही है तथा पत्नी यह अनुभव करती है, कि पति के रूप में परमात्मा की ही पूजा हो रही है तथा दोनों मिलकर जब यह अनुभव करते हैं, कि बच्चों के रूप में भगवान् श्री कृष्ण का लालन-पालन हो रहा है, तो ये सभी सम्बन्ध ईश्वर की सतत आराधना बन जाते हैं। आप चाहे कितने व्यस्त क्यों न हों परन्तु, इस भावना के कारण सुबह से शाम तक निरन्तर कई कार्यों को करते हुए भी आप परमात्मा की पूजा में ही संलग्न रहते हैं।

बुराई को अच्छाई से दूर करें

आपके समक्ष जो परिस्थितयां आती हैं, वे या तो अच्छी होंगी अथवा बुरी। इनमें से कुछ अनुकूल हो सकती हैं और कुछ प्रतिकूल। दोनों प्रकार की स्थितियॉ जीवन में आवश्यक हैं। उनका अच्छी तरह उपयोग करना चाहिए। यदि परिस्थितियाँ विषम हैं तो अपने मन को ईश्वर में लगाने का प्रयास कीजिये। आपको इस कठिनाई से निकलने का रास्ता प्राप्त हो जाएगा। यदि कभी उत्तेजना और कडुवाहट आ जाय तो उसे उत्तेजना और कडुवाहट से दूर करने का प्रयास नहीं कीजिए। बुराई को बुराई से समाप्त नहीं किया जा सकता है।

उदाहरण के लिये मान लें कि पति या पत्नी में से कोई एक कुछ गलती करता है, तो दूसरे को उत्तेजना में कुछ ऐसा नहीं करना चाहिए जो पहले की गलती से भी अधिक बुरा हो। यदि किसी कारण से पति एक दिन के लिए क्रोध करता है, तो पत्नी को तीन दिनों तक गुस्सा करने की योजना नहीं बनानी चाहिए। ऐसी भावना तो बिल्कुल गलत है।

प्रत्येक व्यक्ति की पहली प्रक्रिया-ईंट का जवाब पत्थर से देने की होती है। यदि कोई व्यक्ति कुछ ऋणात्मक कार्य करता है, तो दूसरे व्यक्ति को ठीक वैसी ही प्रतिक्रिया होती है और वह तत्काल उसी भाषा में जवाब देना चाहता है। परन्तु, आपके गहरे स्वरूप की पूर्णता और आनन्द, धैर्य धारण कर अपने व्यक्तित्व के माध्यम से बुराई की प्रतिक्रिया में अच्छाई की अभिव्यक्ति में हैं।

इसमें चाहे आप कितनी बार भी असफल क्यों न हुए हों परन्तु, अपने दाम्पत्य जीवन के साथी के व्यक्तित्व में जो बुराइयॉ हैं उनके प्रति प्रेम, सहानुभूति, समझदारी और अच्छाई अभिव्यक्त करने का प्रयास कभी बन्द नहीं कीजिए।

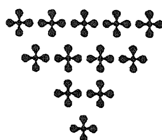
आत्मनिरीक्षण करते रहें

सभी गृहस्थों को आत्मनिरीक्षण करने की कला में प्रवीण होना चाहिए। आत्मनिरीक्षण का अर्थ है- भावनात्मक आवेग से अप्रभावित रहकर अपने मन में उठने वाले भाव तथा विचारों का निरपेक्ष विश्लेषण करना।

प्रतिदिन आपको अपना गन्दा प्लेट साफ करना पड़ता है। यदि प्लेट को आज धोने की आवश्यकता है तो आप बैठकर यह नहीं सोचने लगते हैं कि "आज प्लेट साफ कर देने पर यह फिर कल गन्दा हो जायेगा तो मैं इसे क्यों साफ करूं ? क्यों नहीं इसे पटक कर तोड़ दूँ ?''

इसलिए भावनात्मक रूप से आसक्त हुए बिना प्रतिदिन आपको अपने मन में झॉकना चाहिए और यह देखना चाहिये कि मन की मैल को कैसे धोया जा सकता है। यदि अपने व्यक्तित्व में, अथवा जीवन में कोई गलती दिखाई पड़े उसे सुधारने और दूर करने का निश्चय करना चाहिए। ऐसा नहीं सोचें कि "यही समस्या तो बार-बार उठेगी। अनेक चीजों से तालमेल करना पड़ेगा। किसी भी चीज को परिवर्तित करना असंभव है।''

धीरे-धीरे आत्मनिरीक्षण का अभ्यास करते रहें और अपने मन में जो भी बुराइयॉ दिखाई पड़े उन्हें दूर करने का प्रयास करें। ईश्वर आपके अन्दर हैं। उनकी कृपा से आप अपने तथा दूसरों में आश्चर्य जनक परिवर्तन ला सकते हैं और अपने परिवार तथा आसपास के लोगों में सुख, शान्ति, समता, सामंजस्य और आनन्द की सरिता संचारित कर सकते हैं।



पन्च महायज्ञ

वैदिक शास्त्रों के अनुसार प्रत्येक गृहस्थ को पांच प्रकार के यज्ञ करना आवश्यक है। यज्ञ ऐसी परिशोधक क्रियायें हैं जिसे करने से व्यक्ति काम, क्रोध, लोभ अहंकार और द्वेष जैसे दुर्गुणों से मुक्ति प्राप्त करता है। यज्ञ आपके हृदय की पवित्र वेदी पर प्रज्वलित एक ऐसी रहस्यमय अग्नि है, जिसमें आप अपने दुर्गुणों की आहुति देते हैं।

देव-यज्ञ

पहला है देव यज्ञ। जिसका अर्थ ईश्वर की आराधना है। आप अपनी श्रद्धानुसार राम, कृष्ण, विष्णु , शिव, देवी अथवा ब्रह्मन् के रूप में परमात्मा की पूजा करते हैं। आराधना अथवा पूजा का अर्थ है-ध्यान, प्रार्थना, जप और ईश्वरार्पण।

परमात्मा के जिस रूप की आप पूजा करते हैं, उसे इष्ट देवता कहते हैं। उदाहरण के लिये, जब आप राम को अपना इष्ट देवता मानते हैं, तो आप भगवान राम का ध्यान करते और ऊँ श्री रामाय नमः-मन्त्र का जप करते हैं।

यह समझ लेना अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि ईश्वर एक ही है, परन्तु उनका ध्यान और पूजन विभिन्न प्रकार से विभिन्न रूपों में किया जा सकता है। हिन्दू धर्म में जो अनेक देवी देवताओं का वर्णन है, वह वास्तव में एक ही परमेश्वर की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं।

भगवान श्री कृष्ण गीता में कहते हैं-"आप यज्ञों के द्वारा देवताओं को प्रसन्न करें। बदले में आप से इस प्रकार प्रसन्न हुए देवता, आपकी कामनायें पूर्ण करें। इस प्रकार एक दूसरे की सहायता करते हुए आपको आत्मसाक्षात्कार के रूप में सर्वोच्च उपलब्धि प्राप्त हो"

यज्ञ भावना से रहित जीवन अर्थहीन है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं-"यज्ञ के अन्त में जो सामग्री बची हुई है। उसको भोजन के रूप में ग्रहण करने वाले व्यक्ति सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं। जो केवल अपने लिये ही भोजन पकाते हैं, वे पाप का ही भक्षण करते हैं।''

उपरोक्त कथन का यह निहितार्थ है कि यदि आप अपने अहं तुष्टि के लिए इन्द्रिय योग का स्वार्थ पूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं, तो आपकी चेतना में संकीर्णता आ जाती है, आप आत्म केन्द्रित बन जाते हैं। इस प्रकार आपको घोर अँधकार का सामना करना पडता है। परन्तु, जब आप अपना मन, वचन, कर्म और सभी भावनायें अपनी अन्तरात्मा को समर्पित कर देते हैं, तो आप प्रकाश पथ-ज्ञान मार्ग पर अग्रसर होने लगते हैं। आपकी चेतना में विस्तार होने लगता है। आपका व्यक्तित्व दिव्य गुणों के सुन्दर पुष्पों से सुशोभित हो जाता है।

देव यज्ञ के द्वारा आप न केवल आन्तरिक आनन्द प्राप्त करते हैं बल्कि, संसार के सुख, समृद्धि और शान्ति में भी रहस्यमय ढ़ंग से वृद्धि करते हैं।

ॠषि-यज्ञ

शास्त्रों के रूप में ॠषियों ने ज्ञान का अनन्त सागर प्रदान किया है। ये सभी अत्यन्त बहुमूल्य है और प्रत्येक व्यक्ति के लिये अनमोल धरोहर है। परन्तु वैदिक ज्ञान का एक बहुत छोटे भाग का ही अध्ययन हो पाया है और उसके सीमित अंश से ही समान्य जनसमूह परिचित है।

हिन्दू शास्त्रों में ज्ञान का जो अनमोल रत्न छुपा है, उससे मानवता अनभिज्ञ है। राजयोग सूत्र में अद्‌भुत ज्ञान का भण्डार है, जो मनोविज्ञान से सम्बन्धित है। ज्ञानयोग, भक्तियोग, राजयोग और कर्मयोग से सम्बन्धित जितने भी ग्रन्थ हैं, उन में व्यक्तित्व के विकास के लिये अनेक व्यावहारिक निर्देश और प्रणालियों का वर्णन है।

ॠषि-यज्ञ का अर्थ है- शास्त्रों के अध्ययन से स्वयं ज्ञान प्राप्त करना और इस ज्ञान को दूसरों में वितरित करना। इस प्रणाली को अपनाकर

आध्यात्मिक रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति शोध कर्त्ता बन जाते हैं। अपनी अन्तर्दृष्टि, अनुभव, उदाहरण, विचार और लेखन से वे शास्त्रों की शिक्षाओं की व्याख्या करते हैं और आने वाली पीढ़ियों में प्रेरणा और ज्ञान भरते हैं।

पितृ-यज्ञ

इस प्रकार के यज्ञों का उद्देश्य पूर्वजों की आत्मा को प्रसन्न करना है। कहा जाता है कि पूर्वजों की आत्मा एक विशेष लोक-जिसे चन्द्रलोक कहते हैं में रहती है। 'चन्द्रलोक का अर्थ भौतिक चन्द्रमा से नहीं बल्कि, एक सूक्ष्य चेतना का लोक है, जहाँ सूक्ष्म प्रकार के भोगों के अनुभव हुआ करते हैं। पूर्वजों की आत्मा उनके कर्म और आध्यात्मिक उन्नति के आधार पर विभिन्न लोकों में रहती है। इन में से कुछ को मुक्ति भी मिल जाती है। फिर भी गृहस्थों का यह कर्तव्य है, कि उन्हें याद करें तथा उनके लिये प्रार्थना, पूजा के साथ-साथ शुभ कर्मों का सम्पादन करें।

अनुष्ठानिक दृष्टिकोण से गृहस्थों को पितृयज्ञ के रूप में श्राद्ध और तर्पण करना होता है। यह कार्य पूर्वजों की पुण्य तिथि अथवा शुक्ल पक्ष की पहली तिथि को करते हैं। जब यह यज्ञ श्रद्धा-भक्ति पूर्वक किया जाता है, तो पूर्वजों की आत्मा जो नरक में होती है, उसे बाहर निकलने की शक्ति मिलती है तथा जों स्वर्ग में हैं, उन्हें और अधिक आनन्द प्राप्त होता है। वे अधिकाधिक सुख, शान्ति, संतोष और पोषण प्राप्त करते हैं।

आधुनिक युग में पितृयज्ञ

विस्तृत दृष्टिकोण से आप इस संसार में जो कुछ भी करते हैं, उससे आपके परिवार और पूर्वजों को गौरव प्राप्त होता है। आपको ऐसा कार्य करना चाहिए जिसे देखकर आपके पूर्वज यदि जीवित होते तो गौरव का अनुभव करते।

जब तक जीव मुक्त नहीं हो जाता, तब तक आपके पूर्वजों की आत्मा और आपकी जीवात्मा के साथ सम्पर्क बना रहता है। जब परिवार में कोई भी व्यक्ति महान् कार्य करता है, तो सूक्ष्म लोक में स्थित पूर्वज अत्यन्त प्रसन्न

होते हैं। शास्त्रों में कहा गया है कि यदि परिवार में कोई संत-महात्मा हो जाता है, तो वह सात पीढ़ियों को संसार-सागर से पार कर देता है।

लडके को पुत्र कहा गया है, जिसका अर्थ है कि उसके कार्यों से पुत्त नामक नरक में फँसी पूर्वजों की आत्मा मुक्त हो जाती है। दूसरे शब्दों में- जो अपने पूर्वजों को पुत्त नामक नरक से मुक्त करे वही पुत्र है। यही बात लडकी जिसे पुत्री कहा जाता है के साथ भी है। अज्ञान तथा कुछ सामाजिक परिस्थितियों के कारण लोग पुत्री से अधिक पुत्र को महत्व देने लगते। पुत्री अथवा पुत्र कोई भी अपने शुभ कर्मों से अपने पूर्वजों को प्रसन्न कर सकता है।

सबों का मूलभूत कर्तव्य है कि अपने अच्छे कर्मों से परिवार का गौरव बढ़ाये। केवल शुभ कर्मों से ही पूर्वजों की आत्मा प्रसन्न होती है। इसके विपरीत कुकर्मों से पूर्वजों की आत्मा अत्यन्त दुःखी होती है।

नृयज्ञ अथवा मनुष्य यज्ञ

दूसरे मनुष्यों की भलाई के लिये जो भी शुभ कर्म किये जाते हैं वे नृयज्ञ हैं। विस्तृत दृष्टि कोण से भूखों को भोजन कराना, अनपढ़ों को पढ़ाना, रोगियों और वृद्धों की सेवा करना और दुःखियों के दुःख दूर करना इत्यादि मनुष्य यज्ञ के अन्तर्गत आते हैं।

ईश्वर सबों में स्थित है। जब आप अपने परिवार तथा समाज में प्रेम और समझदारी बढ़ाते हैं तो आप ईश्वर की आराधना कर रहे हैं। आप मनुष्य यज्ञ कर रहे हैं। ऐसे शुभ कर्मों से आपको चित्त शुद्धि प्राप्त होगी।

आपका शुभ कर्म केवल आपके परिवार, मित्र और सम्बन्धियों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिये। बल्कि, जाति, धर्म, लिंग और देश की भावना से ऊपर उठ कर आपके अच्छे कार्य समस्त मानवता के कल्याण के लिये होने चाहिए।

भूत-यज्ञ

इस यज्ञ के द्वारा आप जानवर, पक्षी और अन्य निम्न योनियों के प्राणियों के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करते हैं। आज के युग में लोगों को छोटे-छोटे

जीवों के महत्व का ज्ञान हो रहा है। यह एक ऐसा जगत् है जहां पेड़-पौधे, जानवर, पक्षी, मछलियां, कीड़े-मकोड़े और अन्य सभी दृश्य-अदृश्य जीव परस्पर सम्बन्धित हैं। सभी मिलकर पर्यावरण सन्तुलन प्रदान करते हैं।

हिन्दुओं में गाय की पूजा करने पर विशेष बल दिया गया है। गाय को सभी जीवों के प्रतिनिधि के रूप में चुना गया है। जिस प्रकार आप लोगों के द्वारा किये गये भले कार्यों के लिये अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं, वैसे हीं जानवरों के द्वारा जो मानव कल्याण के लिये उपयोगी कार्य होते हैं, उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के लिये आप गौ पूजा करते हैं। गाय दूध देकर तथा अन्य कई प्रकार से लोकहित का कार्य करती है। ऐसे ही अन्य प्राणी किसी न किसी रूप में मानव-कल्याण के कार्य में प्रत्यक्ष और परोक्ष योगदान दे रहे हैं। गाय की पूजा करने का आदर्श सभी प्राणियों में ईश्वर दर्शन करते हुए, सबों में विद्यमान परमात्मा की पूजा करने की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करता है।

हिन्दू संस्कृति में पीपल जैसे वृक्ष तथा तुलसी जैसे पौधों की पूजा की जाती है। इसका अर्थ है। सभी पेड़-पौधों को सम्मान देना तथा स्वयं उन्हें नष्ट न करना।

नागपंचमी जैसे विशेष दिन पर सर्प जैसे प्राणियों को दूध पिलाने का भी एक विशेष विधान है। इसका अभिप्राय सर्प जैसे विषधर जीव में भी ईश्वर दर्शन करना है।

पंच-ऋण

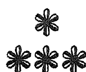
ऐसी मान्यता है कि प्रत्येक व्यक्ति जो इस संसार में आता है, उसे पांच प्रकार के ऋण चुकाने हैं। ईश्वर की आराधना करके आप देवऋण (दिवयज्ञ) चुकाते हैं। श्राद्ध, तर्पण तथा सद्कर्मों के द्वारा आप पितृऋण चुकाते हैं। मनुष्यों के प्रति उदारता पूर्वक सद्कर्म करके, आप मानव ऋण (नृ-यज्ञ) चुकाते हैं। अन्य जीवों के प्रति सम्मान प्रकट कर तथा सभी प्राणियों, पेड़, पौधों की रक्षा करके आप भूतऋण चुकाते हैं।

आदर्श स्थिति

अच्छी तरह यह समझ लेना कि आप आध्यात्मिक रूप से समस्त सृष्टि के साथ जुडे हैं-एक आदर्श स्थिति है। आप ईश्वर के साथ भी सम्बन्धित हैं। वास्तव में आप स्वयं परमात्मा हैं। पुनर्जन्म की इस प्रक्रिया में आप पेड़-पौधे, पक्षी और अन्य छोटे-बड़े जीव-जन्तुओं का जीवन जी चुके हैं। अपने शुभ कर्मों के प्रभाव से आप स्वर्गनिवासी देवत्व को भी प्राप्त कर सकते हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखने से यह समस्त ब्रह्माण्ड ही आपका परिवार हो जाता है।

पंचयज्ञों के माध्यम से आप सृष्टि में विद्यमान परमात्मा की ही पूजा करते हैं। आपमें सार्वभौमिक दृष्टिकोण का उदय होता है।

"यह समस्त सृष्टि हमारा शरीर है। समस्त जीव हमारे व्यक्तित्व के ही विभिन्न अवयव हैं। मैं सबों में विद्यमान परमात्मा हूँ। जब यह दृष्टिकोण आपके व्यक्तित्व में विकसित हो जाता है। तो आप जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाते हैं।





स्वामी ज्योतिर्मयानन्द

शिक्षा

गहरी दृष्टि से शिक्षित होने का अर्थ मानवी क्षमता
और मूल्यों को विकसित करना, अपनी मानसिक
तनावों को सफलता पूर्वक समाप्त करना तथा
विनम्रता, निष्कपटता, करुणा और उदारता
जैसे सद्‌गुणों को विकसित कर लोगों के
साथ शान्ति और सद्‌भावना पूर्वक
रहना है। यदि किसी में इनका
अभाव है तो उसे कभी
शिक्षित नहीं कहा जा
सकता !

बच्चों की शिक्षा

बच्चों की शिक्षा का विषय अत्यन्त महत्वपूर्ण है। क्योंकि, संस्कृति, परम्परा, धर्म और समाज में जो कुछ भी उत्कृष्ट है, वह इस बात पर निर्भर करता है कि आप बच्चों को किस प्रकार शिक्षित करते हैं। बच्चे आगे चलकर बड़े और वृद्ध होते हैं। जन्म-मृत्यु के चक्र में चलते हुए कर्म-सिद्धान्त और पुनर्जन्म के कारण वृद्ध ही पुन: बच्चे के रूप में जन्म लेते हैं।

महान् संस्कृति की परख उस कला से होती है जिससे समाज में बच्चों की शिक्षा दी जाती है। जिस समाज में बच्चे निराश हैं, यदि उन्हें मानसिक क्लेश सहन करना पड़ता है, उनके स्वाभाविक और उच्च विकास के लिए समुचित वातावरण नहीं मिलता और जहाँ क्या सही और क्या गलत है इसका निर्णय करने की कला नहीं सिखायी जाती, वह समाज अधोगामी है।

इसलिये, यह जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि बच्चों को शिक्षा देते समय अभिभावक को बालक के प्रति कैसी भावना बनानी चाहिए।

कर्मों का सम्बन्ध

इस सत्य को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि बच्चे वस्तुत: आत्मा हैं। कर्मों के आधार पर पुनर्जन्म के माध्यम से माता-पिता विशेष जीवात्मा को सन्तान के रूप में आकृष्ट कर लेते हैं। इसलिये, परिवार में बच्चे का आना कोई आकस्मिक घटना नहीं है। इसकी पृष्ठ भूमि में एक प्राकृतिक नियम है। बच्चे की जीवात्मा को उसके कर्मों के प्रतिफलन के लिये एक विशेष प्रकार का वातावरण आवश्यक होता है। प्रकृति के नियम से उनके लिये वैसे ही

माता-पिता की सृष्टि हुई है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि "व्यक्ति का पिता उसका शिशु है'' बालक की जीवात्मा अपने अभिभावक का चुनाव करती है और उसी के माध्यम से जन्म ग्रहण करती है।

योग विचार धारा के अनुसार बालक, माता के गर्भ से ही सीखना आरंभ कर देता है। उस समय भी वह संस्कार ग्रहण करता है। इसलिये, योग दर्शन के अनुसार गर्वती महिला को सत्संग और सद्कर्मों में संलग्न रहना चाहिए। उसे अपने विचार, सम्पर्क और यहाँ तक कि चित्रों के देखने में भी सावधानी रखनी चाहिए। यदि गर्वती महिला लड़ाई के मैदान में जाने को तैयार किसी योद्धा का चित्र देखा करे तो ऐसी संभावना है, कि जन्म लेने वाले शिशु में वैसे ही संस्कार आ जायें। इस प्रकार, योग संस्कृति के अनुसार आप अपनी इच्छानुकुल सन्तान प्राप्त कर सकते हैं। आप बच्चे को सन्त, योद्धा, राजनीतिज्ञ, व्यवसायी या चोर बना सकते हैं।

इसके साथ-साथ आपके लिये यह जानना भी आवश्यक है कि आप स्वयं बालक की सृष्टि नहीं कर रहे हैं। कर्मों के आधार पर बालक आपकी ओर आकृष्ट हुआ चला आया है। आप जो कुछ भी कर रहे हैं वह कर्मों के अटूट नियम के अनुरूप ही है। परन्तु, इसका अर्थ यह नहीं कि आप निश्चिन्त होकर बैठे रहें और कर्मों के नाम पर जैसा जी में आये वैसा करते रहें। कर्मसिद्धान्त को यदि ठीक ढंग से समझ लिया जाय तो यह पुरुषार्थ करने की प्रेरणा देता है। इस प्रकार आप प्रकृति के नियमों को नियंत्रित कर उनको अपने तथा दूसरों के कल्याण के लिये प्रयुक्त कर सकते हैं

बालक परमात्मा का प्रतिबिम्ब है

बच्चे क्यों माता-पिता को प्रिय लगते हैं ? कुछ किलो ग्राम वजन वाला छोटा सा जीव, कैसे उनके हृदय को जीत कर उनके जीवन का केन्द्र बिन्दु बन जाता है ? किसी जानवर (चाहे वह बाघ का ही नव-जात बच्चा क्यों न हों) अथवा मनुष्य के बालक को देख कर आपके मन में प्रेम की धारा क्यों प्रस्फुटित होती है ? इसके पीछे क्या मनोविज्ञान है ?

इन प्रश्नों का संक्षिप्त उत्तर इस प्रकार दिया जा सकता है-प्रत्येक व्यक्ति अपनी चेतना में परम सुन्दरता, परम प्रेम और परम समता को समेटना चाहता है। ये सब केवल ईश्वर-परमात्मा में ही उपलब्ध हैं। परन्तु, ईश्वर साक्षात्कार प्राप्त करने की अन्तर्जात कामना अमूर्त रूप से प्रत्येक व्यक्ति में होती है। जटिल मन इस स्वाभाविक वृत्ति को समझ नहीं पाता। इसलिये प्रकृति अनेक प्रकार के अनुभवों के माध्यम से इस नैसर्गिक प्रेरणा को प्रबल करती है। इसलिये, माता-पिता जब अपनी संतान को प्यार करते हैं, तो उस प्यार के द्वारा ईश्वर-प्रेम को पकड़ने का प्रयास करते हैं। आपके बच्चे की निष्कपटता, सहजता और निर्दोषिता के रूप में परमात्मा आपके बच्चों के माध्यम से स्वयं को प्रस्तुत करते हैं।

जब आप यह समझ जायेंगे कि पूर्ण शान्त होने के आपके जीवनलक्ष्य को आप का बालक प्रतिबिम्बबित करता है। तो उस में विद्यमान परमात्मा के समक्ष नतमस्तक हो जायेंगे। परन्तु, इस भाव के कारण बालक के प्रति आपके व्यावहारिक कर्तव्यों के पालन में कहीं गतिरोध नहीं उत्पन्न हो जाय इस बात की सावधानी रखनी होगी।

बालक के विकास के लिये आवश्यक, बनाने में आपका प्रेम कहीं अवरोधक नहीं बनना चाहिए। आप बच्चे को खिलौना नहीं समझें और नहीं अपनी खुशी तथा आनन्द के लिये उस पर निर्भर ही रहें। यदि आप ऐसा करेंगे तो उसका विकास अवरूद्ध हो जाएगा।

ऐसा करने से उसका विकास जैसा होना चाहिए वैसा नहीं होगा। इसके विपरीत, आप अच्छी तरह समझ लें कि आपके शिशु का व्यक्तित्व आपसे सर्वथा अलग और स्वतंत्र है। जिस प्रकार चिड़िया का बच्चा एक दिन घोसला छोड़ कर उड़ जाता है, वैसे ही आपका बालक आपके जीवन से भी एक दिन अलग हो जाएगा।

शिशु मन की विचित्र सुग्राहकता

योग के अनुसार, बच्चों के क्लेश प्रसुप्तावस्था में रहते हैं। चूँकि, उनमें स्वार्थ और अहंकार की प्रबलता नहीं होती इसलिये, प्रकृति की ओर से उन्हें एक विचित्र प्रकार की सम्वेदनशीलता प्रदान की गयी है।

बच्चों के साथ व्यवहार करते समय माता-पिता को इस विशेष प्रकार की सुग्राहकता के प्रति सजग रहते हुए यह ध्यान रखना चाहिए कि उनके मन पर किसी भी घटना अथवा अनुभव का बहुत गहरा प्रभाव पडता है। बचपन की ऐसी कई घटनाये हैं जो आज तक आपको याद हैं, जवकि कुछ दिन पूर्व घटित घटनाओं को आप भूल गये हैं। बालक का मन आश्चर्यजनक रूप से संवेदनशील और सुग्राही होता है। उसकी सुग्राहकता गुह्य एवं रहस्यमय होती है।

कभी-कभी बालक उन विषयों पर चिन्तन करते हैं जिनके विषय में आप सोचते और अनुभव करते हैं। आप कई बातों को भले ही बड़े लोगों से छुपा लें परन्तु, जब आप अपने छोटे "सन्त"-बालक के पास बैठते हैं तो वे बिना कुछ कहे आपकी मन: स्थिति को भांप लेते हैं। आपके व्यक्तित्व से निकलने वाले स्पन्दनों को पकड़ने के प्रति बालक अत्यधिक सुग्राही होते हैं। इसलिये बड़े लोगों को बच्चों की मानसिक सुग्राहकता को सावधानी पूर्वक समझने का प्रयास करना चाहिए।

बच्चों की आँखों से इस संसार को देखिये

माता-पिता को यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि बच्चों की दृष्टि में किसी वस्तु का मूल्य वही नहीं होता जैसे वे स्वयं सोंचते हैं। उनके मूल्यांकन का ढंग ही अलग होता है। आपके अन्दर एक ऐसी अन्तर्दृष्टि है, जिसके द्वारा आप जान सकते हैं कि बच्चे क्या अनुभव करते हैं। अधिकांश लोग इतने कठोर और असंवेदनशील हो जाते हैं, कि उन्हें अपना बचपन भूल जाता है। जो अधिक उन्नत्त और सुग्राही हैं, वे उतने कठोर नहीं होते। उनमें बाल्यकाल की चेतना बनी रहती है।

इसलिये, माता-पिता को बाल मनोविज्ञान से अवगत होना आवश्यक हो जाता है। इसे किसी विश्वविद्यालय में सीखने की आवश्यकता नहीं। यह तो सहज-स्वाभाविक रूप से स्नेह-प्रेम के द्वारा विकसित किया जा सकता है। अपने बच्चों के साथ आपका सम्पर्क और संचार परस्पर प्रेम और स्नेह के आधार पर होना चाहिए। आप उन्हें स्वाभाविक रूप में समझने का प्रयास करें, जिससे

उनके द्वारा किये गये किसी अजीबों गरीब काम को आप ठीक-ठीक समझ कर अधिक उत्तेजित न हों। अपनी वास्तविकता को बालक के कोमल हृदय पर कठोरता से थोपने का प्रयास नहीं करें।

उदाहरणार्थ किसी बच्चे को जब कोई चीज मिलती है, तो अपनी अद्‌भुत सुग्राहकता के कारण वह स्वयं को संसार का सबसे सुखी व्यक्ति मान कर उसे अपनी मां को दिखाना चाहता है। इस उद्देश्य से वह अपनी छोटी सी हथेली में कीचड़ भरकर माता की नाक के पास सटा कर दिखाने लगता है। इस महान् कार्य के बदले उसे एक जोरदार तमाचा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं मिलता।

एक दूसरा उदाहरण देखिये :-मान लें, आप एक लेखक हैं। जब आप कोई रचना लिख रहे होते हैं, तो आपका अबोध बालक शान्त भाव से आप को देखता है तथा मन ही मन आपको लिखते हुए देखकर प्रसन्न होता है। कुछ देर बाद आप अपने कागजातों को वहीं छोडकर कार्यालय चले जाते हैं। बालक आपको सहयोग करने की भावना से प्रेरित होकर आप के सारे पृष्ठों पर स्याही गिरा कर कलम से आड़ी तिरछी रेखायें इस प्रत्याशा में खींच कर प्रसन्न होता है, कि जब आप वापस घर आयेगें तो अपना काम पूरा हुआ देख कर प्रसन्न हो जायेंगे। आप जब घर आकर यह सब देखते हैं, तो कडी डांट और प्रताडना से बालक का स्वागत करते हैं। इसलिये, यह आवश्यक है कि आप किसी स्थिति अथवा चीज को बालक की दृष्टि से देखने का प्रयास करे और उसकी गलतियों के लिये उसे प्रताड़ित नहीं करें। माता-पिता को बालको की कोमल भावनाओं के प्रति जागरूक होना चाहिए और उनके द्वारा किये गये कार्यों के प्रति सम्वेदनशील होना चाहिए।

सभी के लिये स्थान

कर्मों के कारण एक ही परिवार में जन्में बच्चों के भाग्य में बहुत अन्तर हो जाता है। एक ही माता-पिता से जन्में बालक विकास की विभिन्न अवस्था में होते हैं। एक बालक सन्त स्वभाव का होता है, तो उसका दूसरा भाई अत्यन्त क्रूर और शैतानिक प्रवृत्ति का हो सकता है। कुछ बच्चों में किसी एक क्षेत्र

में महान् बनने की योग्यता होती है, जबकि उसी परिवार में जन्में दूसरे बच्चे मन्द बुद्धि के हो सकते हैं। अन्तर्दृष्टि सम्पन्न अभिभावक अपने बच्चों को उनकी प्रकृति के अनुसार विकसित होने के लिये प्रेरित करते हैं तथा उनकी प्रतिभा के विकास के लिये समुचित वातावरण देते हैं। माता-पिता की आशा और अपेक्षा के अनुसार यदि बच्चे विकसित नहीं हो रहे हैं, तो उन्हें दुःखी अथवा निराश नहीं होना चाहिए। क्योंकि, बच्चों को स्वतंत्र रूप से रहने और स्वयं को अभिव्यक्ति करने का पूरी अधिकार है। उन्हें अभिभावको की इच्छा के अनुरूप ही पूरी तरह ढाला नहीं जा सकता।

जिस प्रकार सूर्य, वर्षा और पृथ्वी बीज के अंकुरण के लिये समुचित वातावरण निर्मित करते हैं, वैसे ही बच्चों के विकास के लिये माता पिता को भी यथोचित वातावरण बनाना चाहिए। यदि बीज किसी कँटिली झाडी का है, तो अंकुरित होने के पश्चात् कँटिली झाड़ी ही बनता है। इसके विपरित गुलाब के बीज से गुलाब ही निकलते हैं। परन्तु, यदि कॅटिली झाडी का भी ठीक-ठीक उपयोग किया जाय तो उससे अनेक प्रकार की औषधि और अन्य लाभ लिये जा सकते हैं। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु का कुछ न कुछ उपयोग अवश्य होता है।

समाज में यदि अवसर और परिस्थितियॉ बनायी जाय तो हर प्रकार के लोगों की आवश्यकता होगी। प्रत्येक व्यक्ति के लिये कोई न कोई काम होगा। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से कोई व्यक्ति छोटा अथवा बडा नहीं है। इसलिये माता-पिता को अपने प्रेम की अभिव्यक्ति में कोई भेद भाव नहीं करनी चाहिए। ऐसा नहीं कि जो बच्चे होनहार और उनकी आशाओं के अनुरूप विकसित हो रहे हैं, उनके प्रति वे अधिक आकर्षित हों और जिनका विकास उनकी आशा के अनुसार नहीं हो रहा उनके प्रति उदासीन हो जाय।

अनुशासन की मूल भावना

अनुभव के आधार पर माता-पिता को बालकों को प्रशिक्षित करने की कला विकसित करनी चाहिए। इसके लिये कोई पूर्वनिश्चित नियम नहीं हो सकता। जो लोग बालमनोविज्ञान की अनेक गंभीर पुस्तकों को पढ़कर बच्चों को प्रशिक्षित्त करना चाहता हैं, वें निर्जीव कम्प्यूटर बन जाते हैं। वे किसी समस्या के प्रति अपनी प्रतिकिया व्यक्त करने के लिये हर क्षण उन पुस्तकों के पृष्ठो में मार्ग ढूढ़ा करते हैं।

इसके विपरीत, बच्चों के साथ भावनात्मक सम्पर्क के द्वारा उनके मन में एक आन्तरिक भाव का जागरण होना चाहिए। आप कई बार गलती कर सकते है। आप आवेग में आकर बच्चों के प्रति अपनी बेरूखी और निर्दयता पूर्ण व्यवहार के लिये पाश्चाताप भी कर सकते है। यह भी विकास का ही एक अंग है।

माता-पिता को घर में दृढ़तायुक्त प्रेम और स्नेह का वातावरण बनाना चाहिए। बच्चे जब आपकी आशा के अनुरूप कुछ उपलब्धि प्राप्त करें तो उन्हें अपने सन्तोष से उत्पन्न आनन्द का रसास्वादन करने दीजिये। इसके विपरीत, यदि वे आपकी अपेक्षा के अनुरूप कार्य नहीं करते है, तो उनको आपके असंतोष की कडुवाहट का भी स्वाद चखना चाहिए। बच्चे अपने माता-पिता को प्रसन्न करना चाहते हैं। इस प्रकार वे आप को संतुष्ट करने की कला सीखते हैं। बच्चों को सम्भालने के लिये सूग्राही समझ की आवश्यकता है और उनके प्रति दृढ़ता तथा कठोरता बरतने के लिये तो माता-पिता में विशेष प्रकार की बुद्धिमत्ता की जरूरत होती है।

बच्चों को हर समय मनमानी नहीं करने दें। बच्चे को अनुशासित तथा प्रशिक्षित करें। आपका प्रेम उनके अनुशासन और प्रशिक्षण में कहीं बाधक न बने इसका अवश्य ध्यान रखें। यदि बच्चा कोई गन्दी आदत पकड़ रहा हो तो उसे दृढता पूर्वक अनुशासित कीजिये। यदि इसके लिये थोड़ा भय अथवा एक दो तमाचा भी लगाना पड़े तो इस में कोई बुराई नहीं है।

एक बालक को बचपन से ही पाकेटमारी की आदत लग गयी। परन्तु, उसकी माँ ने कभी उसे मना नहीं किया। इसके विपरीत, जब वह किसी की पाकेट काट कर घर में कुछ रूपये लाता तो मॉ बहुत प्रसन्न होती थी। इस प्रकार वह एक बड़ा चोर बन गया। एक दिन उसे किसी गंभीर अपराध में लम्बी सजा सुनाई गयी। जेल जाने से पहले उसने अपनी माँ से मिलने की इच्छा की। उसकी मॉ जब आयी तो उसने एक झटके में अपनी माँ के कान काट लिये। "तुमने यह क्या किया ?" माता बोली। उसने कहा-"बचपन में जब मुझे चोरी की आदत लगी तभी तुमने मुझे क्यों नहीं मना किया। ?

इस प्रकार अपनी विकृत समझ के अनुसार माता की ओर से पुत्र को जो भी पेम-स्नेह दिया गया था, उससे पुत्र के मन में कडुवाहट ही उत्पन्न हुई। इ लिये, अच्छे कार्य की ओर बच्चों को प्रेरित करते.समय यदि आपकी

दृढता, कठोरता अथवा यदाकदा ताड़ना बच्चे के मन में थोड़ी देर के लिये यह धारणा बना भी दे कि आप उसे उतना प्यार नहीं देते जितना देना चाहिए, तो भी आपको अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होना चाहिये। बच्चों को अनुशासित करने के लिये दृढ़तापूर्वक सही दिशा में बढ़ते जाना चाहिए। बच्चे ज़ब बड़े हो जायेंगे तो आपकी सहारना करेंगे तथा आपके द्वारा अनुशासित किये जाने के बाद उन्हें जो उपलब्धि प्राप्त होगी उसके लिये आपके प्रति आभार व्यक्त करेंगे।

कुछ अभिभावक की यह धारणा होती है, कि यदि वे अपने बच्चों के साथ अधिक कड़ाई से पेश आयेंगे तो वे उन्हें छोड़ कर चले जायेंगे। परन्तु, ऐसी धारणा ऐसे माता-पिता में होती है जिन्होंने अपने बच्चों के लिये गहरा प्रेम नहीं विकसित किया है। यदि आप अपने बच्चों से सही माने में प्रेम करते हैं, तो आप उनके साथ एक स्वस्थ सम्बन्ध बना लेंगे। इस स्थिति में यदि आप उनकी भलाई के लिये कभी-कभी कठोरता से पेश भी आते हैं, तो बच्चे आपकी मूल भावना को अच्छी तरह समझते हैं और आपके कठोर होने के बाद भी वे आप से प्रेम करते रहेंगे।

आध्यात्मिक-शिक्षा

बालकों को आध्यात्मिक आदर्श की ओर प्रेरित करना चाहिए। परन्तु लोगों को स्वयं ही अध्यात्म की सही समझ नही होती है इसलिये वे आध्यात्मिकता और भौतिकता को अलग-अलग रूप में देखने लगते हैं। इसके साथ ही अपने बच्चों को आध्यात्मिक शिक्षा देने के नाम पर अधिकांश अभिभावक अपनी अतृप्त मानसिकता और अपूर्ण इच्छाओं को बच्चों के माध्यम से प्राप्त करने की गलती कर बैठते हैं।

आपने ऐसी कई कहानियाँ सुनी होगी जहाँ अभिभावकों ने अपने बच्चों को वैसा बनने के लिये कठोर यातना दिया जैसा वे स्वयं नहीं है। माता-पिता स्वयं जिन दुर्गुणों को समाप्त न कर सके, वे चाहते हैं कि उनकी सन्तान उनसे पूरी तरह मुक्त रहे। उसमें ऐसी कोई दुर्बलता नहीं आ जाय जिन से वे स्वयं पीड़ित हैं। अपने में पूर्णता लाये बिना दूसरों को पूर्ण बनाने का प्रयास

भ्रामक और गलत है। आध्यात्मिक अनुशासन तथा धार्मिक प्रशिक्षण देने के नाम पर बच्चों के साथ बहुत निर्दयता पूर्वक व्यवहार किया जाता है।

स्वस्थ जीवन ही धर्म है। धर्म ही जीवन है। विश्वसनीयता, निष्कपटता और नैतिकता ही धर्म है। धर्म, प्रेम के साथ तादात्म्य बनाने का नाम है। इसलिये, किसी भी स्थिति में अति कठोर तरीके नहीं अपनाना चाहिए। इसके विपरीत, ऐसा वातावरण बनाना चाहिए जिसमें बच्चे अपनी जन्मजात आन्तरिक शक्ति को उद्घाटित कर अपना विकास कर सकें। शिक्षा का यही अर्थ है। शिक्षा का अभिप्राय-आपके पास जो कुछ भी है उसे उद्घाटित करना है।

ऊॅंच्च उपलब्धि के लिये केवल बच्चों में एक रूचि पैदा कर दीजिये। ज्योंहि, उनमें सही अर्थों में गहरी रूचि उत्पन्न हो जायेगी, बालक उस दिशा में तीव्र एकाग्रता से आगे बढ़ने लगेगा।

यदि बच्चे में ईश्वर साक्षात्कार प्राप्त करने की रूचि जाग्रत ही गयी, तो वह इसी विषय से सम्बन्धित पुस्तके पढ़ने लगेगा। बाद में जब वह बड़ा हो जायेगा और आप उसके व्यावहारिक जीवन की चिन्ता करने लगेंगे तो आप उससे कहने लगते हैं-"अब गीता, उपनिषद नहीं पढ़े क्योंकि, इनके पढ़ने से परीक्षा नहीं पास करोगे। केवल अपने कोर्स की ही पुस्तकें पढ़ो।'' यह भी संभव है कि आप उसकी आध्यात्मिक प्रगति में कई प्रकार की रूकावटें भी डालें। फिर भी, यदि उसे आध्यात्मिक लक्ष्य के प्रति सच्ची लगन लग गयी है, तो वह सब कुछ करते हुए इसके लिये समय निकाल ही लेगा। इसलिये, माता-पिता को चाहिए कि वे बालकों में शिक्षा के प्रति एक गहरी लगन पैदा कर दें और फिर उसके विकास और परिवर्धन का कार्य उस पर छोड़ दें। कभी-कभी उन्हें अपना अनुभव पूर्ण मार्ग-दर्शन देते रहें। हर समय उनके पीछे नहीं पड़े रहें।

बच्चों के मन में उच्चादर्शों और भावों को स्थापित करने के लिये विशेष प्रकार की स्थिति बनाने की आवश्यकता होती है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण है कि माता-पिता स्वयं उच्चादर्शों को प्राप्त करने के लिये निष्ठा और ईमानदारी

पूर्वक़ प्रयास करें। वे स्वयं अपने व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास की ओर प्रयत्नशील हों। दूसरी बात जो महत्वपूर्ण है वह है-माता-पिता के आपसी सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण हों। उनमें परस्पर प्रेम और समझदारी हो। तीसरी महत्वपूर्ण बात है कि माता-पिता अपने मनोरंजन और आनन्द के लिये अधिक समय तक बाहर नहीं रहें। उन्हें अधिक से अधिक समय बच्चों के साथ मिलने, खेलने और बात करने के लिये निकालना चाहिये। अभिभावकों के लिये बच्चे अनेकों प्रकार के अनुभव प्रदान करते हैं। इसके साथ-साथ बच्चों के व्यक्तित्व विकास के लिये माता-पिता आदर्श वातावरण का निर्माण करते हैं।

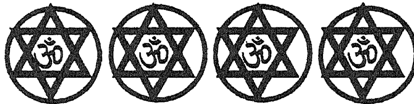
इसलिये, रात-दिन बच्चों को टी.वी. नहीं देखने दीजिए। वर्तमान युग का यह भयानक अभिषाप है कि माता-पिता बच्चों को मशीनी मनोरंजन की दया पर छोड देते हैं। परिणाम यह होता है, कि बच्चे असंवेदनशील, असुग्राही, भावनाशून्य और शुष्क बनते जा रहे हैं और अपने समाज़ तथा माता-पिता को कष्ट दे रहे हैं।

इसके विपरीत, उन्हें कहानियाँ और अनेकों प्रकार की प्रेरक कथायें सुनाकर उनके साथ आत्मीय सम्पर्क बनाना चाहिए। उनके जीवन में भागीदार बनकर उनके संसार के साथ निकट सम्बन्ध बनाइए। शिक्षा केवल बच्चों को पढाने-लिखाने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि बच्चों के विकास के लिये आवश्यक स्पन्दन ग्रहण करने योग्य बनाना तथा आपके जीवन में उनकी साझीदारी लेना भी शिक्षा का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कि बच्चों का जन्म संभोगसुख के दौरान कोई आकस्मिक घटना नहीं। बल्कि, हिन्दू परम्परा के अनुसार माता-पिता बनना एक प्रभावशाली योग और महत्वपूर्ण उत्तरदाईत्व है। यदि इस जिम्मेदारी को अच्छी तरह नहीं समझ लिया जाता तो व्यक्ति गृहस्थ कहलाने योग्य नहीं है। यदि वह बच्चों की जिम्मेदारी नहीं उठा सकता तो उसे बच्चे पैदा करने का कोई अधिकार भी नहीं है। इसके विपरीत, यदि आप एक जिम्मेदार माता-पिता का कर्तव्य पूरा कर रहे हैं तो आप गहन योग साधना ही कर रहे हैं।

बच्चों के प्रति अपने कर्तव्य पालन के द्वारा आप और अधिक तेजी से उन्नति करेंगे। आप केवल बच्चों के लिये ही नहीं उन्हें शिक्षित करते हैं, बल्कि, उन्हें शिक्षित करने में आपका भी हित है। आपको शिक्षित करने के लिये प्रकृति ने आपके साथ अन्य कई जीवात्माओं (बच्चों) को जोड़ दिया है।

आपके निर्देशन और सुरक्षा में बच्चे जो भी प्रतिभा विकसित कर सकें उन्हें बढाने में अपना सहयोग दीजिए। जब बच्चों का विकास अद्‌भुत व्यक्तित्व के रूप में हो जाएगा, जब वे ब्रह्माण्डीय जीवन की ओर प्रेरित होंगे और जब वे आत्मज्ञानी सन्त बन जायेंगे तो इससे उनका, माता-पिता, पूर्वजों और समस्त संसार का कल्याण होगा। शिक्षा का लक्ष्य यही होना चाहिए।



सच्ची शिक्षा क्या है ?

शिक्षा के द्वारा आप अपनी प्रसुप्त प्रतिभा को प्रस्फुटित करते, अपने वास्तविक स्वरूप को उद्‌घाटित करते और अपने जीवन के परम उद्देश्य को प्राप्त करते हैं। ऐसा करके आप मानवता की सर्वोच्च संभावित सेवा करते हैं। परन्तु, अधिकांश लोगों के लिये शिक्षा की धारणा बहुत परिसीमित है। विश्वविद्यालयों की बड़ी-बडी उपलब्धियों और डिग्री से विभूषित व्यक्तियों को विद्वान माना जाता है। सापेक्षिक दृष्टि से विद्वता की यह परिभाषा सही भी है। परन्तु, शिक्षा के दार्शनिक और आदर्शवादि दृष्टिकोण से शिक्षित होने की उपरोक्त परिभाषा सतही है। बड़ी-बड़ी उपाधि, डिग्री और विश्वविद्यालयों से सम्मान प्राप्त कर लेने मात्र से ही कोई व्यक्ति सच्चे अर्थों में शिक्षित नहीं कहा जा सकता।

गहरी दृष्टि से शिक्षित होने का अर्थ प्रतिभा और उच्च मूल्यों को प्रस्फुटित करना, मानसिक तनाव को सम्भालने की क्षमता पाना, दूसरों के साथ शान्ति और सामंजस्य पूर्वक रहने में प्रवीण होना तथा विनम्रता, निष्कपटता, करुणा और उदारता जैसे दैवी गुणों को विकसित करना है। यदि किसी व्यक्ति में इन गुणों का अभाव है तो उसे शिक्षित कदापि नहीं कहा जा सकता।

एक बहुप्रचलित कथा है। एक बार विद्वानों का एक समूह नाव में चढ़ कर नदी पार कर रहा था। उनमें एक गणितज्ञ, एक साहित्यकार और एक वैज्ञानिक था। बातचित के क्रम में इन तीनों ने केवट से एक-एक प्रश्न पूछा।

गणितज्ञ ने पूछा–''क्या तुमने कभी गणित की कोई पुस्तक पढ़ी है ? या कभी गणित का अभ्यास किया है ?'' ''नहीं'' केवट ने कहाँ ''मैं तो आम के कुछ पेड़ गिन सकता हूँ अथवा थोडी बहुत साग–सब्जी की नापतौल कर लेता हूँ। इसके आगे मुझे गणित का कोई ज्ञान नहीं है।'' तब तुमने अपना आधा जीवन व्यर्थ गंवा दिया–गणितज्ञ ने कहा ''क्योंकि गणितीयज्ञान के कारण जो रोमांच और आनन्द होता है, उससे तुम वंचित रह गये।'' केवट अपने इस दुर्भाग्य से बड़ा दुःखी हुआ। उसने उदास होकर कहा–''इसमें मैं क्या कर सकता हूँ ? मेरा जन्म एक निर्धन और पिछड़े परिवार में हुआ जहाँ शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी।''

इसी प्रकार वैज्ञानिक ने भौतिक विज्ञान, रासायन विज्ञान, खगोल विज्ञान तथा अन्य क्षेत्रों में जो आश्चर्यजनक प्रगति हुई है उसके विषय में बोलता रहा। फिर उसने पूछा–''क्या तुम्हें विज्ञान के अत्यन्त विशाल क्षेत्र के विषय में कोई ज्ञान है ?'' और उसके इस प्रश्न के उत्तर में केवट ने कहा–''नहीं। मैं तो एक अज्ञानी और गरीब व्यक्ति हूँ। भला मुझे इसका ज्ञान कैसे होगा?'' ''तब तो तुम्हारा अधिकांश जीवन व्यर्थ चला गया। क्योंकि, जीवन के आनन्द से तुम वंचित रह गये"– वैज्ञानिक बोला।

साहित्यकार ने पूछा–''क्या तुमने शेक्शपियर या ऐसे ही किसी अन्य महान् साहित्यकार की कोई रचना पढ़ी है ? क्या तुमने उपन्यास पढ़ने के आनन्द का अनुभव किया है ?'' केवट ने जवाब दिया–''नहीं, मैं तो निरक्षर हूँ। मैंने कुछ भी नहीं पढ़ा है।'' केवट के इस जवाब से वे सभी उस पर तरस खाने लगे और वह स्वयं भी बहुत दुःखी हुआ।

परन्तु, जैसे ही नाव धारा में आगे बढ़ी कि एक भयानक भँवर की चपेट में आकर चकोरे खाने लगी। उस समय केवट ने उन लोगों से पूछा–''क्या आप में से कोई भी तैरना जानता है ? हमलोगों की नाव भँवर में फँस गयी है। हो सकता है कि हम लोगों को तैर कर अपनी जान बचानी पड़े।'' सब एक साथ बोल पड़े–हमलोग तैरना नहीं जानते।'' ''तब तो आप सबों का सारा जीवन ही व्यर्थ चला गया", केवट ने कहा !

इस कहानी की यही शिक्षा है कि आप बहुत बड़े विद्वान हो सकते हैं, आप महान् गणितज्ञ, वैज्ञानिक, साहित्यकार अथवा इंजिनियर हो सकते हैं। आप बड़े-बड़े पुल, भवन और मशीनों का निर्माण कर सकते हैं। परन्तु प्रश्न यह है कि जब घर में कोई समस्या उत्पन्न होती है तो क्या आप शान्ति पूर्वक उसका समाधान कर लेते हैं ? जब अचानक आप कोई दु:खद् समाचार सुनते हैं अथवा आपका डाक्टर यह रहस्योदघाटन करता है, कि आप किसी प्राणघातक बीमारी से पीड़ित हैं-उस समय आपकी प्रतिक्रिया क्या होती है ?

जीवन में जब कोई चुनौती पूर्ण परिस्थिति उत्पन्न होती है तो आपकी कोई भी उपलब्धि आपकी सहायक नहीं होती। तब आप स्वयं को डूबते हुए अनुभव करते हैं। इसके विपरीत, शैक्षणिक दृष्टि से अशिक्षित ऐसे लोग हैं जो कठिन परिस्थितियों का शान्त मन से सामना कर सकते, विषम स्थिति में सन्तुलन बनाये रख सकते, विपरीत अवस्था में परिपक्व निर्णय ले सकते, दूसरों को परामर्श दे सकते और उन में प्रेरणा तथा सुरक्षा की भावना प्रेषित कर सकते हैं। क्या ऐसे लोग विश्वविद्यालयों से निकले अनेक छात्रों से अधिक शिक्षित नहीं कहे जायेंगे ?

वैदिक शिक्षा प्रणाली

वैदिक काल की शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना था जो समाज की उन्नत्ति में सहयोग देने के साथ-साथ अपनी उन्नति भी कर सकें। इसलिये वह प्रणाली संयम, साधना और अनुशासन पर आधारित थी। जो कोई भी विद्यालय में प्रवेश लेता था उसे शरीर, मन और इन्द्रियों पर कड़ा संयम रखते हुए अनुशासन के साथ पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना होता था।

उन दिनों सभी प्रकार की शिक्षाओं को वेदाध्ययन ही कहा जाता था। धनुष विद्या में रूचि रखने वाले किसी गुरु के संरक्षण में धनुर्वेद का अध्ययन करते थे। उसे धनुष विद्या के साथ-साथ उससे सम्बन्धित मंत्रों की भी साधना कराया करते थे। पहले साधना कराके गुरु जब यह निश्चित कर लेते थे, कि शिष्य अच्छी तरह अनुशासित हो गया है, तब उसे धनुर्विद्या की शिक्षा दिया

करते थे। जब कोई औषधि में रूचि रखता था तो उसे आयुर्वेद की शिक्षा दी जाती थी। सभी प्रकार के ज्ञान को वेद कहा जाता था। क्योंकि, उस समय यह आदर्श था कि आप जो कुछ भी सीख रहे हैं उसे श्रद्धा, भक्ति, विनम्रता और समर्पण के साथ सीख कर मानवता में विद्यमान परमेश्वर की सेवा करते हुए अपने जीवन के परम लक्ष्य-आत्मसाक्षात्कार को प्राप्त करें।

शिक्षा और जीवन के चार पुरुषार्थ

शिक्षा को पूरी तरह समझने के लिए आवश्यक है कि आप जीवन के चार पुरुषार्थ-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को ठीक-ठीक समझ लें। जीवन का आधार धर्म है। धर्म का अर्थ किसी बाद, मत, सम्प्रदाय अथवा विशेष अनुष्ठान इत्यादि से नहीं है। बल्कि, जीवन में नैतिक मूल्यों का विकास और स्थापना ही वास्तव में धर्म है। सभी शिक्षाओं का मूलाधार नैतिकता का विकास है। आप जो कुछ भी प्राप्त करें अथवा सीखें वह नैतिकता पर अवलम्बित हो धर्म पर आधारित हो। इस विषय में आपको स्पष्ट और सुलझी हुई चेतना रखनी चाहिए। यदि आपकी शिक्षा के मूल में धर्म नहीं है तो ऐसी शिक्षा व्यर्थ है। इसके अभाव में सभी ज्ञान और उपलब्धियाँ आसुरी परिस्थितियाँ पैदा करेंगी। यदि कोई असंयमी तथा उदण्ड व्यक्ति संयोग से कोई बड़ी उपलब्धि करले, तो साधारण व्यक्ति की दृष्टि में वह महान् भले ही हो जाय, परन्तु आध्यात्मिक और दार्शनिक दृष्टि से यदि उसको उपलब्धि दूसरों को कष्ट देती है तो उसे आसुरी ही माना जाता है।

इसलिए, शिक्षा की जड़ धर्म में स्थित होनी चाहिए। समाज में शान्ति, सामंजस्य और सद्भावना स्थापित करना ही एक आदर्श शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए। किसी को भी अहिंसा, सत्य और शुचिता के सिद्धान्तों का कभी भी अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। लोभ, हिंसा और वासना को कभी स्वीकृति नहीं देनी चाहिए। इन्हें यथा संभव नियंत्रित करने का प्रयास होना चाहिए।

यदि कोई छात्र यह सोच कर डाक्टरी की पढ़ाई आरंभ करता है कि-"एक दिन मैं करोड़ पति बन जाऊँगा" तो धर्म की दृष्टि से यह अच्छी शुरूआत नहीं है। वह डाक्टर बनने के बाद बड़ा अस्पताल बनाकर धनवान बन सकता है। परन्तु, उसकी प्रेरणा का स्रोत यदि धन है तो यह सच्ची शिक्षा का परिणाम

नहीं कहा जा सकता। आधुनिक युग में ऐसी ही शिक्षा अधिकांश लोग प्राप्त कर रहे हैं।

लोग इन्द्रिय भोग के पीछे भागते हैं और आधुनिक शिक्षा का लक्ष्य भी अधिक से अधिक इन्द्रिय सुख की सामग्री एकत्रित करना हो गया है। विद्यार्थियों का सपना बहुत पैसा कमाना, बहुत शक्ति प्राप्त करना, इतना अधिक धन अर्जित करना कि जो जी में आये ले लें और जहाँ चाहे जा सके हो गया है। परन्तु, जिस शिक्षा से ये सारी चीजें प्राप्त होती हैं वह सच्ची शिक्षा नहीं है। जो बुद्धि इन लक्ष्यों की प्राप्ति में प्रयुक्त की जाती है उसे भोग बुद्धि कहा जाता है।

महाभारत में एक प्राचीन कहावत है-"**सुखार्थिन: कुत: विद्या**"-जिसे सुख की इच्छा है उसे ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।" आप शिक्षा लेने के अधिकारी नहीं हैं। आगे कहा गया है-"**कुत: विद्यार्थिन: सुखम्**"-"यदि आप विद्यार्थी हैं, तो आपको सुख कैसे प्राप्त हो सकता है ?" यदि आप सच्चे ज्ञान के पिपासु हैं तो आपको आराम और सुख नहीं मिल सकता। आराम और विलासता का त्याग कोई दु:खद् स्थिति नहीं बल्कि, आनन्ददायक अवस्था है।

एक ऐसे विद्यार्थी की कल्पना कीजिए जो २५ वर्ष का युवक है। उसकी इच्छा है कि आरामदायक तकिये पर लेट कर कम्प्यूटर का बटन दबाता रहे। घर के सभी कड़े काम उसके माता-पिता करें और वह अपने बिछावन से हिले तक भी नहीं। बाहरी व्यक्ति उसे देखकर कह सकते हैं कि वह बहुत शिक्षित है क्योंकि, उसने कम्प्यूटर साईंस में दक्षता प्राप्त की है। परन्तु आगे चलकर वह कैसा आदमी बनेगा ? जीवन में अनेक प्रकार की विषम और चुनौती पूर्ण स्थितियाँ आती हैं। यदि वह अनुशासित नहीं है, कठिन परिश्रम करने का यदि उसे अभ्यास नहीं है तो इन चुनौतियों का सामना करने के लिए वह पूरी तरह तैयार नहीं है।

बच्चों को पढाते समय आवश्यकता से अधिक सुरक्षा देकर उन्हें बरबाद नहीं करें। यदि बालक में धैर्य, सहनशीलता नहीं है, अपने अहंकार पर आघात लगने से यदि वे सन्तुलित नहीं रह पाते हैं, अगर उन्हें अपमान और कष्ट

सहने का अभ्यास नहीं है, तो धर्म को अपनी शिक्षा का आधार बनाने में ऐसे विद्यार्थी असफल रहे हैं।

जीवन का दूसरा पुरुषार्थ है अर्थ। उच्च लक्ष्य की प्राप्ति के लिए धन-दौलत साधन हैं। केवल रुपया पैसा इकट्‌ठा कर लेना ही सब कुछ नहीं है। आपने देखा होगा कि लॉट्री अथवा अन्य किसी तरीके से लोग रातो-रात धनवान बन जाते हैं। परन्तु, इससे उनके आन्तरिक जीवन में कोई रूपान्तरण नहीं होता। इसके विपरीत, उनके व्यक्तित्व में अन्य कई दुर्गुण आ जाते हैं। यह क्रिया वैसे ही है, जैसे कोई मैगनी फाईंग ग्लास से आपके चेहरे को देख रहा हो। जब आप चेहरे को खुली ऑख से देखते हैं तो बहुत सौम्य और सुन्दर लगता है। परन्तु, इस ग्लास से देखने पर चेहरे पर उगे एक-एक बाल बड़े-बड़े खम्भे की तरह दीखने लगते हैं। अचानक धनवान बनने से ऐसा ही हो जाता है। आप के दुर्गुण कई गुणा बढ़ जाते हैं। किसी भी तरह अचानक धनवान बनने से आप अच्छे नहीं बन जाते।

धर्म में स्थित रहकर जो भी अर्थ आप कमाते हैं, वह आपकी आत्मोन्नति का साधन बन जाता है। इसके द्वारा और अधिक शुभ कर्म करते हुए मानवता की सेवा में सहयोग करते हैं। इस प्रकार जिस धन का उपयोग किया जाता है, उससे आपका अभिमान नहीं बढ़ता है।

जीवन का तीसरा पुरूषार्थ काम है। इसका अर्थ सामाजिक जीवन और पारिवारिक जीवन में स्नेह-प्रेम को बढ़ाना है। शिक्षा का यह भी एक अत्यन्त आवश्यक अंग है। यदि आप अपने परिवार के सदस्य, मित्र, सहयोगी और आसपास के लोगों के साथ सामंजस्य और सन्तुलन नहीं बना पाते हैं तो आपका जीवन खोखला हो जाता है।

आप चाहे जिस भी परिस्थिति में जहाँ भी हैं, आपको विभिन्न प्रकार के सम्बन्धों की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। यदि आप विभिन्न स्वभाव और अहँकेन्द्रित लोगों के साथ तालमेल बनाने को कला नहीं जानते हैं, तो आपका जीवन खोखला बन जाता है। कोई भी अकेले नहीं रह सकता। हिमालय जैसे एकान्त स्थान में रहकर भी आप बन्दर, चिड़िया और गिलहरियों से एक सम्बन्ध बनाकर अपने एकाकीपन को दूर करते हैं।

'काम' जीवन के उन मूल्यों का नाम है जिसे विकसित कर आप दूसरों के साथ सामंजस्य और तालमेल बनाते हैं, जिससे मानवता की सेवा करने के आदर्श को पूरी स्वतंत्रता से प्राप्त कर सकें। अपने अहं से ऊपर उठना शिक्षा का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण और व्यापक पक्ष है। सच्चे अर्थों में शिक्षित व्यक्ति दूसरों की सेवा तथा सहायता में अपनी समस्त प्रतिभा और उपलब्धियों को लगा देता है। इसके कारण उसकी प्रतिभा दिनानुदिन और अधिक बढती है। अधिक से अधिक प्रतिभाशाली और आन्तरिक सुख-समृद्धि का रहस्य नि:स्वार्थ भावना को विकसित करने में छुपा है।

जीवन का परम पुरुषार्थ है मोक्ष। सभी शिक्षाप्रणालियों का लक्ष्य इस आदर्श को प्राप्त करना है। आप जो शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं उसे अपराविद्या कहा जाता है। उपनिषदों के अनुसार ज्ञान दो प्रकार का हुआ करता है-अपरा विद्या और परा विद्या।

अपरा विद्या सांसारिक विद्या है जो आपके दैनिक जीवन में आपकी सहायता करती है। यह सापेक्षिक ज्ञान है। विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जाने वाले कला, विज्ञान और अन्य सभी विषय इसके अन्तर्गत आते हैं। परा विद्यागुह्य ज्ञान को कहा जाता है। जब आप किसी गुरु के निर्देशन में धारणा और ध्यान का अभ्यास करते हैं, तो आपकी जिज्ञासा हमेशा के लिये पूर्ण हो जाती है। परा विद्या ऐसा ज्ञान है, जिसके जानने के पश्चात् कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता।

परा विद्या एक ऐसी उपलब्धि है जिस में सभी शिक्षाओं की अन्तिम परिणति होनी चाहिए। यही लक्ष्य है। इस लक्ष्य को दृष्टि में रखते हुए एक आदर्श विद्यार्थी विनम्रता, धैर्य, लगनशीलता और सहजता जैसे सद्‌गुण का विकास करता है। उसे आत्मनिरीक्षण और तप का अभ्यास करना चाहिए। उसे आत्मनिर्भर होना चाहिए तथा मानवता की सेवा के द्वारा ईश्वर के साथ एकात्मता स्थापित करनी चाहिए। सच्ची शिक्षा की ये सभी महान् उपलब्धियाँ हैं। यदि आप में ये सारे गुण हैं, तो आप सच्चे अर्थों में शिक्षित कहे जायेंगे। इससे अलग और सब अशिक्षा ही है। ईश्वर आपको परिशुद्ध चेतना प्रदान करें जिस की सहायता से आपको निर्वाण प्राप्त हो सके।

सम्यक् शिक्षा और स्वतंत्रता की ओर

शिक्षा तीन प्रकार से दी जाती है :-उपदेश, उदाहरण और सूक्ष्म प्रभाव से। अपने बच्चों के साथ बातें करें। परन्तु, उनसे बहुत अधिक बात करने की आवश्यकता नहीं। समान्य तौर पर अभिभावक वाचिक शिक्षा को आवश्यकता से अधिक महत्व दे देते हैं। आपको यह कहते कई लोग मिलेंगे-"मैंने अपने लडके से तीन घण्टे तक बातें करके सब ठीक कर लिया।'' परन्तु सच्चाई यह है कि इससे कुछ भी नहीं ठीक होता। अगले दिन बात वही होती। समस्या ज्योंकि त्यों बनी रहती है। बातें करना ठीक है। परन्तु, यह एक सीमा के ही अन्दर होनी चाहिए। इसके विपरीत, अपना उदाहरण प्रस्तुत कर उन्हें सिखाइए। आप अपने बच्चों से जो कराना चाहते हैं, वह काम स्वयं करना आरंभ कर दीजिए।

बच्चे सूक्ष्म रूप से संस्कार ग्रहण करते हैं। बच्चों से आप कुछ भी छुपा नहीं सकते। यदि माता-पिता नैतिक मूल्यों का पालन करते हैं तथा उनका आचरण शुद्ध और सात्विक है तो बालक उसे निश्चित रूप से अपना लेंगे। यदि उनका अपना आचरण अनैतिक है, यदि वे स्वयं आपस में टकराते रहते है, तो बच्चा भी वैसे ही संस्कार ग्रहण कर लेता है। आप स्वयं ठीक नहीं हैं और बच्चे को ठीक बनने का उपदेश देते रहेंगे, तो समस्यायें उत्पन्न होंगी। आप जो कुछ भी सिखाना चाहते हैं उसका उदाहरण सर्वप्रथम स्वयं बनिए।

यदि आप बच्चों को प्रात· काल जागने को कहते हैं, तो सबसे पहले आप स्वयं प्रात. काल जागना शुरू कीजिए। यदि आप यह चाहते हैं कि बच्चे

अपना सामान ठीक जगह पर व्यवस्थित्त रूप से रखें, तो आप अपने कमरे का सामान ठीक और व्यवस्थित रखें। आप उन्हें दिखा सकते हैं कि आप कैसे अपनी इच्छित वस्तु जब चाहें, निकाल कर समय और शक्ति बचाते हैं। उन्हें दिखाइए कि कैसे आप अपने कपड़े प्रेस करते, अपने बर्तन साफ करते और सजा कर रखते हैं। जब वे अपने कार्य को ठीक ढंग से करना सीख जायेंगे तो उन्हें ऐसा करने में एक आत्मगौरव और आन्तरिक संतोष का अनुभव होगा।

अन्त में आप ध्यान और प्रार्थना के द्वारा वातावरण में सद्भावना और प्रेम के स्पन्दन प्रसारित करते हैं-"परमात्मा हमारे बच्चों को कुशाग्र बुद्धि, सूक्ष्म समझ और प्रखर स्वास्थ्य प्रदान करें।" अपने बच्चों को प्रभावित करने का यह एक सूक्ष्म परन्तु अत्यन्त प्रभावशाली तरीका है।

अपनी सर्वाधिक शक्ति और योग्यात से कार्य करें, परन्तु आन्तरिक रूप से विरक्त रहें

विषम परिस्थिति में परमात्मा सर्वश्रेष्ठ सहायक है। ईश्वर के चरणों में समर्पित होकर अनुभव कीजिए कि यह सब ईश्वरीय योजना के अन्तर्गत ही हो रहा है। लोग और उनके भाग्य आपके नियंत्रण में नहीं है। कभी-कभी सर्वश्रेष्ठ अभिभावकों के घर भी निकृष्टतम संतान उत्पन्न हो जाती है।

परन्तु, परिस्थिति विशेष में आप अपनी सर्वाधिक योग्यता और शक्ति से प्रयास करते रहें। आप परिवार के पिता हो सकते हैं। परन्तु, यह कभी अनुभव नहीं करें कि आप पिता हैं। वास्तविक पिता तो सभी पिताओं का पिता है। कभी इस भ्रम में नहीं रहिये कि आप अपने बच्चों के भाग्य विधाता हैं। परमात्मा आपके माध्यम से कार्य करते हुए बच्चों .की सहायता कर रहें हैं। ऐसी भावना से अपना कर्तव्य करें और निश्चिन्त रहिये। यदि इस भाव को विकसितं नहीं किया गया, तो आपके अन्दर बच्चों की शिक्षा और देखभाल को लेकर हीन भावना उत्पन्न हो जाएगी और आप हमेशा इसी पश्चाताप

में डूबे रहेंगे कि-"यदि मैं थोड़ा बदल जाता या दूसरे ढ़ंग से इनकी शिक्षा कराई होती, तो आज ऐसी स्थिति नहीं आती। ऐसा करके न तो आप बच्चे की सहायता करते हैं नहीं अपनी।

बौधिक बनाम आध्यात्मिक शिक्षा

शिक्षा दो प्रकार की होती हैं : बौधिक शिक्षा, जिसकी सहायता से आपका बच्चा नौकरी पाता है, रुपये पैसे कमाता है और समाज के विभिन्न कार्य-व्यापारों में भाग लेता है। और दूसरी है, आध्यात्मिक शिक्षा । इस शिक्षा से बालक अपनी भावना और विषमताओं को सम्भालने की कला सीखता है। इस शिक्षा के अभाव में अन्य सारी शिक्षायें खोखली हैं।

आज के पढ़े लिखे लोगों को देखिये। अधिकांश लोगों को यह ज्ञात नहीं है कि विषम स्थिति और असफलता की परिस्थितियों में स्वयं को कैसे सन्तुलित रखा जाय। इस वर्ग में करोड पति और बड़े-बड़े विद्वान जिनके कमरे में विद्वता के लम्बे चौड़े प्रमाण पत्र लगे हैं आते हैं। उन्हें अपनी समस्याओं का एक ही समाधान मिलता है कि पिस्तौल उठाकर अपने तथा अपने चारो ओर के लोगों को धांय-धांय कर दें !

हिन्दू धर्म में ऐसे अनेक ग्रन्थ हैं, जिनमें आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक ज्ञान की गहरी जानकारी दी गयी है। फिर भी इनको पढ़ने पर ये ग्रन्थ रोचक परिकथाओं से भी अधिक आकर्षक लगते हैं। बच्चों के साथ रामायण, महाभारत और भागवत पुराण का नित्य प्रति अध्ययन करना चाहिए। पढ़ने में ये ग्रन्थ रोचक तो हैं ही, इसके साथ इनमें मन को नियंत्रित करने, आवेगों पर विजय पाने, गुणों से अप्रभावित होने तथा अहंकार को समाप्त करने का बहुत ही व्यावहारिक निर्देश दिये गये हैं। अपने बच्चों को सत्संग का अवसर दीजिए। सत्संग दो तरह के होते हैं। एक प्रकार के सत्संग में बच्चे पूजा, मंत्र-जप, प्रार्थना, योगासन, ध्यान और विविध प्रकार के अनुष्ठान करना सीखते हैं और दूसरे प्रकार के सत्संग में वे गीता, रामायण और महाभारत जैसे सद्ग्रन्थों की शिक्षा पाते हैं। आपके घर में यदि अलग से एक पूजा गृह हो तो सबसे

अच्छा है। यदि अलग कमरा रखना संभव न हो, तो छोटे से स्थान को मन्दिर का रूप दिया जा सकता है जहाँ आप बच्चों के साथ इस प्रकार का सत्संग कर सकें।

अपने बच्चों के साथ सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय के लिए एक निश्चित समय निर्धारित करें । अपनी सुविधा और समय के अनुसार यह कार्यक्रम प्रतिदिन, सप्ताह में एक दिन या दो दिन के लिये रखा जा सकता है। इसे आप आधे घण्टे अथवा एक घण्टे के लिये निश्चित कर सकते हैं।

बच्चों के साथ विश्राम

विश्राम करने की कला की जानकारी प्रत्येक व्यक्ति के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। परिवर के सभी सदस्यों को साथ-साथ व्यायाम करने का आनन्द लेना चाहिए। वे साईकिल की सवारी कर सकते हैं। एक मील साथ-साथ टहल सकते हैं, किसी झील में तैर सकते हैं अथवा ऐसा कोई भी कार्यक्रम बना सकते हैं, जिससे सारा परिवार प्रकृति के निकट सम्पर्क में आ सके। इसके अतिरिक्त सभी सदस्य मिलकर कुछ कार्यक्रम कर सकते हैं। खाना खाते समय परिवार के सभी लोगों का साथ-साथ बैठना, आराम और आनन्द के लिये बहुत महत्वपूर्ण समय है। इससे आपस में सम्पर्क बढता है। आपको सात्विक भोजन में रूचि लेनी चाहिए। ऐसे भोजन से आपको भरपूर पोषण मिलता है।

परिवार के सभी सदस्य एक साथ बैठ कर किसी शिक्षाप्रद फिल्म का आनन्द ले सकते हैं। यद्यपि अधिकांश फिल्में राजसिक होती हैं जिनसे मन और बोझिल और विकृत हो जाता है। फिर भी, कुछ फिल्में ऐसी भी हैं जिनसे मन में शुभ संस्कार स्थापित होते हैं। अपने बच्चों को रामायण, महाभारत, गीता, बाइबिल और ऐसी ही प्रेरक कथाओं पर बनी फिल्में दिखलाइए। ऐसी फिल्मों में अच्छे संदेश दिए गये हैं। ऐसा करके आप अपने बच्चों को राजसिक और तामसिक फिल्मों के प्रभाव से बचाते हैं। ऐसी फिल्मों में सैक्स, वासना, हिंसा और ऐसी ही अनेक बुराइयों की भरमार होती है जो मन में कुसंस्कारों को बढ़ाती हैं।

अपने बच्चों के हृदय में आध्यात्मिक प्रेरणा जागृत करें

वैदिक परम्परा के अनुसार ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश के पहले मुण्डन संस्कार कराया जाता है। सिर का मुण्डन जीवन के अन्तिम लक्ष्य-सन्यास

की स्मृति कराता है जिसमें आप संसार को हमेशा-हमेशा के लिये अपने सिर से उतार फेंकते हैं अर्थात् त्याग देते हैं। इसलिए यह संस्कार सन्यास का पूर्वाभ्यास है। इसकी ओर बढ़ाया गया यह एक छोटा सा कदम है। इससे युवक ब्रह्मचारी मुक्ति के अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करने लिए अपना जीवन लगा देने की प्रेरणा पाते हैं।

इन परम्पराओं से बच्चों को एक शक्तिशाली संदेश प्राप्त होता है। इस संस्कार को प्राप्त करते समय अपने बच्चे से यह कहने के बदले कि "तुम इस परिवार के हो, तुम्हें परिवार की खुशहाली के लिए ही काम करना है"-यह कहिए-"मेरे प्यारे बच्चे, तुम परमात्मा की संतान हो। तुम्हारा पहला कर्तव्य ईश्वर से प्रेम करना तथा उसकी सेवा करना है।" इसके साथ ही आप इस बात को अच्छी तरह जान लें, कि जब आपका बालक ईश्वर प्राप्ति के मार्ग पर चल पड़ेगा तो परिवार और समाज को असीम आनन्द तथा ईश्वरीय आशीर्वाद प्राप्त होगा।

जीवन के उन्नत आदर्श और उद्देश्यों से परिचय कराने के लिये बच्चों के बड़े होने की प्रतीक्षा नहीं करें। इसके विपरीत, चाहे वे समझें अथवा नहीं, वाल्यावस्था से ही उनमें शुभ संस्कार करते रहें। उन्हें सत्संग में लायें और उनके हृदय में आध्यात्मिक प्रेरणा प्रेषित करते रहें।

अहंकार को सात्विक बनाइए

अहंकार के माध्यम से आप विकसित होते हैं। अहंकार के द्वारा आप दूसरों को मार्ग निर्देषित करते हैं। आप अपने बच्चों को अहंकार के द्वारा शिक्षित करते हैं। जब आप उनके अच्छे कर्मों की प्रशंसा करते हैं, तो वे अपने अहंकार के माध्यम से ही और अधिक परिश्रम करने लगते हैं।

यद्यपि प्रकृति की ऐसी व्यवस्था है कि कोई भी कार्य अन्ततः अहंकार के माध्यम से ही पूरा किया जाता है। जब आपका अहंकार पूरी तरह सात्विक हो जाता है, तो आपको गहन विनम्रता का अनुभव होता है। उस स्थिति में आप इस सत्य का अनुभव करने लगते हैं, कि आप परमेश्वर के हाथों में एक उपकरण हैं। इस प्रकार आप अपने अहंकार से ऊपर उठ जाते हैं।

अहंकार से प्रेरित होकर यदि आप निरन्तर शुभ कर्म करते रहें, तो धीरे-धीरे आपका अहंकार कम होने लगता है। इसके विपरीत, यदि आप बुरे कर्मों में स्वयं को लगा देते हैं, तो आपका अहंकार और बढ़ने लगता है। मन में सत्व की अधिकता होने से अहंकार कम होता है। परन्तु काम, क्रोध, लोभ, और पाखण्ड पर आधारित यदि आप राजसिक कर्मों में लिप्त हो जाते हैं, तो आपका अहंकार और प्रबल हो जाता है। आपके बच्चों तथा आपका अपना विकास इस बात पर निर्भर करता है कि आप अपने अहंकार का उपयोग कैसे करते हैं।

आत्मिक उपहार भौतिक उपहार से उत्तम है

बच्चों के साथ समय बिताने अथवा उनके साथ मेलजोल करने के बदले, बहुत से अभिभावक उन्हें रूपये-पैसे, घड़ी, कार इत्यादि का उपहार देना अधिक पसंद करते हैं। यह एक भयंकर भूल है। बच्चों को परिवार से स्नेह और सद्भावना मिलनी चाहिए। किसी व्यक्ति को प्रेम, सद्भावना और स्नेह से जो प्राप्त होता है, वह किसी भी मूल्यवान भौतिक वस्तु से नहीं मिल सकता।

अपने बच्चों को माता-पिता जो सर्वोत्तम उपहार दे सकते हैं वह है अपना सम्पर्क, साथ और स्नेह । अपने बच्चों के साथ बैठें । उनसे बातें करें। उनके सुख-दुख और भावनाओं के सहभागी बनें। बच्चों में इतना विश्वास भर दें कि वे आपके समक्ष खुले हृदय से अपनी बातें कह सकें। ऐसे वातावरण में एक दूसरे का आशीर्वाद प्राप्त होता है।

जब आप देखते हैं कि आपके समक्ष विश्वास पूर्वक आपका बालक अपने हृदय की बात कहता है, तो आपको आन्तरिक संतोष का अनुभव होता है। इससे आप अपने बालक को सर्वाधिक संभावित रूप से सहायता कर सकते हैं। जब वास्तव में एक दूसरे के साथ बातचीत तथा सम्पर्क होता है, तो परिवार के सदस्य एक दूसरे की समस्याओं को अच्छी तरह समझकर उनके समाधान में सहयोग करते हैं। परन्तु, यदि आपका सम्बन्ध भौतिक स्तर पर केवल लेन-देन तक ही सीमित हो जाता है, तो ऐसा सम्बन्ध सतही और खोखला बन जाता है। लोग एक दूसरे की सहायता करने के बदले, उससे लाभ लेने

का ही प्रयास करते हैं। ऐसे अभिभावकों के बच्चे अपने माता-पिता के बाहर जाने की प्रतीक्षा करते हैं। उनके बाहर निकलते ही वे घर में निरंकुश बन्दर-नाच आरंभ कर देते हैं।

परिवार के सदस्यों के बीच परस्पर मेल-जोल आवश्यक

परिवार में प्रत्येक व्यक्ति जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में परस्पर मेल-जोल बढ़ाने की कला सीखता है। जैसे ही शिशु बड़ा होता है, वह अपने भाई-बहन, माता-पिता , दादा-दादी तथा ऐसे ही कई युवा-वृद्ध लोगों के सम्पर्क में आता है। यही उसे स्वस्थ मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान करता है ऐसा नहीं होने से उसके व्यक्तित्व में कुछ कमी रह जाती है।

व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास के लिए परिवार के सदस्यों के बीच परस्पर मेल-जोल और वार्तालाप का होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि वृद्ध लोग घर छोड़कर किसी वृद्धालय में चले जाते हैं, तो उस परिवार का बालक एक महत्वपूर्ण सम्पर्क से वंचित रह जाता है। दादा-दादी के अभाव में परिवार में एक खालीपन उत्पन्न हो जाता है। पश्चिम के अधिकांश परिवारों के बच्चे, शिक्षा के इस महत्वपूर्ण अंग से सर्वथा वंचित रह जाते हैं।

परिणामस्वरूप वृद्धत्व और मृत्यु को ऐसे बच्चे मनोवैज्ञानिक ढंग से समझ नहीं पाते, जिसके कई दुष्परिणाम प्रकट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे बच्चों का विकास विकृत और असमान्य हो जाता है।

परिवार में वृद्ध व्यक्तियों की उपस्थिति को शुभ मानना चाहिए। सुसंस्कृत समाज में वृद्ध व्यक्तियों को सम्मान अवश्य मिलना चाहिए। कभी-कभी वृद्धावस्था के लोगों का स्वभाव बदल जाता है। उनमें कई खराबियां आ जाती हैं। इसके बावजूद भी परिवार के लोगों को उनका सम्मान करना चाहिए। किसी भी स्थिति में उनका अपमान उचित नहीं। आपकी बूढ़ी दादी कितनी भी चिड़चिड़ी क्यों न हों, आपको हमेशा उनके चरण छू कर आशीर्वाद ही लेना चाहिए।

परिवार के दो वरदान हैं-बालक और वृद्ध। आपके बच्चे चाहे कितनी भी बाल सुलभ मूर्खता क्यों न करें आप उन्हें प्रेम और स्नेह की दृष्टि से

देखते हैं। ऐसे ही, वृद्ध व्यक्ति में चाहे कितनी भी बुराई क्यों न आ गयी हो, आपको उन्हें हमेशा सम्मान की दृष्टि से ही देखना चाहिए।

जिसने साधना नहीं की है, वे वृद्ध होने पर सभी तरह से अनियंत्रित बन जाते हैं। अपने आवेग को वे रोक नहीं सकते। ऐसा व्यवहार वृद्ध लोगों के लिए कोई अस्वाभाविक नहीं है। इसके विपरीत, एक संवेदनशील व्यक्ति उन्हें देखकर यह सन्देश प्राप्त करता है कि-मैं ऐसा नहीं बनूंगा। उनसे घृणा करने के बदले, उनके प्रति अधिक सहानुभूति प्रदर्शित कीजिए और यह अनुभव कीजिए कि यदि अभी से ध्यान नहीं रखा गया तो ऐसी ही अवस्था मेरी भी हो सकती है।

परिवार के माध्यम से प्राप्त होने वाली शिक्षा स्थाई होती है। ऐसी शिक्षा किसी विश्व विद्यालय में नहीं प्राप्त हो सकती। बालक एक प्रकार की शिक्षा माता से, दूसरी प्रकार की शिक्षा पिता से और तीसरी प्रकार की शिक्षा वृद्ध लोगों से प्राप्त करता है। यह सभी उसके व्यक्तित्व निर्माण में योगदान करते हैं। यदि परिवार में कोई ठीक नहीं भी है, तो बालक उन्हें देखकर यह शिक्षा पाता है कि उसे उनके जैसा नहीं बनना है।

इसके अतिरिक्त, इस तथ्य को अच्छी तरह समझ लेना आवश्यक है कि पारिवारिक सम्बन्ध कर्मों के कारण बनते हैं। किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए जीवात्मायें एक साथ एक परिवार में आयी हैं। परिवार के किसी व्यक्ति विशेष के साथ सम्बन्ध सुखद् अथवा दुःखद् हो सकते हैं। परन्तु, इसका आध्यात्मिक महत्व है। कभी-कभी महान् व्यक्ति ऐसे परिवार में जन्म लेते हैं, जहां आपस के सम्बन्ध मधुर नहीं होते। उदाहरण के लिए, मीराबाई एक ऐसे परिवार में चली गयीं जहां उन्हें सभी लोगों से उपेक्षा, अपमान और कड़ुवाहट ही प्राप्त हुई। फिर भी, वे एक महान् सन्त बनीं।

इस प्रकार, विस्तृत दृष्टिकोण से यदि देखा जाय तो इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं, कि जो कुछ भी होता है उसका कोई न कोई उद्देश्य है। परन्तु, इसका अभिप्राय यह नहीं कि परिवार में जो सामंजस्य तथा आध्यात्मिकता का अभाव है उसकी आप उपेक्षा कर दें अथवा स्वीकार करते रहें। इसके विपरीत, आप अपनी शक्ति भर यह प्रयास करें कि परिवार में सामंजस्य, सद्भाव और

स्नेह बढ़े। यदि परिवार का वातावरण आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित नहीं है तो ऐसे परिवार में अधिकांश दुर्बल व्यक्तित्व के बच्चे ही जन्म लेते हैं।

कानूनी बनाम वास्तविक स्वतंत्रता

पश्चिमी जगत् में कानूनी दृष्टि से एक्कीस वर्ष की आयु के बालक सभी प्रकार से स्वतंत्र माने जाते हैं। इस अवस्था में वे अपने माता-पिता की आज्ञा के बिना जो चाहे कर सकते हैं। भारत में पारिवारिक दबाव आजीवन बना रहता है। इससे बच्चों को एक सुरक्षात्मक कवच प्राप्त होता है। बच्चों को ऐसी स्वतंत्रता की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए जिसमें वे अपने माता-पिता के परामर्श के बिना जो जी में आये करने लगे। इसके बदले, उन्हें अपने अभिभावक के साथ मित्रता बनानी चाहिए जिससे कि जब वे बड़े हो जाय उस समय भी उनके मित्र बने रहें।

माता-पिता से स्वतंत्र होना वास्तव में कोई स्वतंत्रता नहीं है। ऐसा करके युवा पीढ़ी स्वयं को कई कष्टों में डाल लेती है। जब आप अपने पिता, माता और बडों को एक मित्र और मार्गदर्शके रूप में देखने लगते हैं, तो आपको सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त होती है। उनका आशीर्वाद और प्रेम प्राप्त करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अभिभावक और बच्चों के बीच ऐसा ताल-मेल होना चाहिए कि जब आवश्यक हो तो बड़े, वर्तमान स्थिति को देखते हुए अपने पुराने मूल्यों को त्याग सकें तथा बच्चे, आकर्षक इच्छाओं को छोड़कर सामंजस्य तथा शान्ति बना सकें।

परम्परागत विवाह

भारत में परम्परागत रीति से जो विवाह होते हैं, उनका आधार दहेज होता है। विवाह का निर्णय इससे प्रभावित होता है कि लड़की का पिता कितनी रकम देने के लिए तैयार है। इस प्रकार के परंपरा बिल्कुल गलत है। यह एक प्रकार की सामाजिक बुराई है।

दहेज प्रथा के कारण पारस्परिक प्रेम सम्बन्ध खराब हो जाता है। भारत के प्रबुद्ध और शिक्षित वर्ग के लोगों को चाहिए कि वे इस कुरीति को समाप्त करने में अपने प्रभाव का उपयोग करें। स्वाभाविक स्नेह के आधार पर उपहार तो दिया जा सकता है, परन्तु वैवाहिक सम्बन्ध में इसे व्यापारिक आधार नहीं

बनाया जाना चाहिए। अन्यथा परिवार में लड़की का जन्म अभिषाप माना जाने लगेगा। ज्योंहि बच्ची का जन्म हो जाता है उसी दिन से पिता उसके विवाह की चिन्ता करने लगता है और सोचने लगता है, कि उसके विवाह में कितना पैसा लगेगा। यह स्थिति सचमुच अत्यन्त सोचनीय है।

यदि पश्चिमी देशों में बसे हिन्दू परिवार के बड़े-बुजुर्ग इस पारम्परिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिए बच्चों पर दबाव डालेंगे, तो ये बच्चे कानूनी परिपक्वता प्राप्त करने तक धैर्य पूर्वक प्रतीक्षा करेंगे। परन्तु उसके बाद अपनी मनमानी करना आरंभ कर देंगे। यदि विवाह का निर्णय परिवार के बड़े बुर्जुर्गों का अधिकार रहेगा तो पश्चिमी जगत् में उनके इस अधिकार का कोई मूल्य नहीं होगा। यदि वे अपने विचार और निर्णय में समझौता नहीं करेंगे, तो आधुनिक युवक उनके इस अधिकार को चुनौती देते हुए, स्वेच्छाधरी बन जायेंगे। इसके विपरीत यदि उनकी सहमति और इच्छा से परिवार के बड़े बुर्जुग विवाह निश्चित करें तो यह अच्छी व्यवस्था होगी।

हिन्दू परम्परा में प्रेम-विवाह को बढ़ावा नहीं दिया गया है। बल्कि, परिपक्व निर्णय के आधार पर विवाह करने की प्रणाली को अधिक महत्व दिया गया है। इसलिए पश्चिमी जगत् में जो हिन्दू युवक और युवतियां हैं, उन्हें अपने विवाह का निर्णय करते समय अपने माता-पिता से मार्ग दर्शन और परामर्श लेना चाहिए तथा उनके निर्देशन में ही अपने जीवन साथी का चुनाव करना चाहिए।

आपके बच्चे जैसे-जैसे बड़े होते जायेंगे, वे परिपक्व निर्णय स्वतः लेने में समर्थ होंगे। उन्हें अभिभावकों के साथ मिलकर निर्णय लेने तथा उनका सहयोग लेने की कला विकसित करनी चाहिए। उन्हें यह अनुभव करना चाहिए कि आप (माता-पिता) उन्हें अच्छी तरह समझते हैं तथा उनकी सहायता करना चाहते हैं। उन्हें आपकी सम्मति को गंभीरता पूर्वक महत्व देना चाहिए।

प्रत्येक माता-पिता का यह महान् कर्तव्य है, कि वे अपने बच्चों के विश्वास को जीतकर उनसे मैत्री भाव बनाए और उनका सच्चा सम्मान प्राप्त करें।

यदि परिवार में शान्ति, सामंजस्य और पारस्परिक मित्र भाव का अभाव है तो उसके प्रत्येक सदस्य दु:खी रहते हैं। इस प्रकार मित्रता बनाने के लिए कुछ त्याग, तप और समझौता करना पड़ता है। परन्तु, इस त्याग का फल अत्यन्त मधुर और गहरा होता है।

बच्चों के हृदय में सांस्कृतिक शिक्षा का बीजारोपण करना चाहिए जिससे वे अपने जीवन साथी का सही चुनाव कर सकें तथा बड़े होने पर अपना परिवार बनाने के बाद भी अपने माता-पिता के साथ मैत्री बनाये रख सकें। यदि ऐसा नहीं होता है तो निश्चित रूप से विषम परिणाम होंगे।

परम स्वतंत्रता

परिवार में रचनात्मक सहयोग और आत्मिक स्नेह के परिवेश में पलते हुए बच्चों को पूरी स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। भारतीय और पश्चिमी परिवार में बहुत अन्तर है। पश्चिमी जगत् के अधिकांश लोगों का कभी कोई परिवार नहीं रहा है। उनके लिए माता, पिता, भाई, बहन से अलग रहना कोई अर्थ नहीं रखता। परन्तु, एक भारतीय के लिए इन सबों से अलग होने की कल्पना भी कष्टदाई होती है। परन्तु, ऐसी धारणा भी नहीं होनी चाहिए। यदि आपका परिवार हिन्दू जीवन दर्शन के आधार पर चल रहा है, तो वैराग्य विकसित होता है। आप स्वयं को आत्मा-जो शाश्वत और स्वतंत्र है के रूप में देखने लगते हैं।

ऐसे वैराग्य का यह अर्थ नहीं है कि आप परिवार के प्रति उदासीन हो जायें। इसके विपरीत, आप जीवन में और कार्य कुशल हो जाते, और आपकी अभिव्यक्ति उत्कृष्ट हो जाती है। वस्तुत: वैराग्य अपनी शाश्वत स्वतंत्रता को उद्घाटित करने की एक प्रक्रिया है और इससे किसी को कोई दु:ख नहीं होता। परन्तु, मुक्ति की भावना के अभाव में चाहे कोई कितनी भी अच्छी स्थिति में क्यों न हो, दूसरे को कष्ट देना और दु:खी करता रहता है। ईश्वर साक्षात्कार प्राप्त कर जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाने में ही सच्ची स्वतंत्रता है।



स्वामी ज्योतिर्मयानन्द

प्रेम क्या है

प्रत्येक पति
को चाहिए कि पत्नी में
स्थित देवी की पूजा करे और प्रत्येक
पत्नी को पति में स्थित ईश्वर की पूजा करनी
चाहिए। इस भावना के कारण पति-पत्नी
एक दूसरे की आत्मा को गहराई
से सम्मान करने लगेंगे। इस
धारणा के कारण
उन में आदर्श
प्रेम का उदय होगा।
एक ऐसा प्रेम जो त्याग करता
है, धैर्य पूर्वक प्रतीक्षा करता है और जो
हमेशा सहयोग करने वाला गहन करुणामय है।
ऐसा प्रेम जीवन की विषम परिस्थितियों
के कारण कम नहीं होता बल्कि,
चन्द्रमा की तरह विषमता की
काली रात्रि के समाप्त
होते ही और प्रखरता
से चमकता है।

मुक्त यौनाचार की भ्रामकता

आधुनिक युग में एक भ्रामक धारणा है। नई पीढ़ी के लोग पूर्वजों की अपेक्षा स्वयं को अधिक सभ्य मानते हैं। क्योंकि ऐन्द्रिक स्तर पर पूर्वजों की तुलना में वे स्वयं को अधिक स्वतंत्र समझते हैं। इस प्रकार की उन्मुक्तता को वे प्रगति की पहचान तथा जीवन के लिए अति-आवश्यक समझते हैं। किन्तु, सच्चाइ . से भिन्न है।

अनियंत्रित भावावेश और अनियंत्रित यौनाचार प्राचीन काल में भी विद्यमान था। किन्तु, उस समय का समाज इसे बुरा मानता था। इसे व्यक्तित्व का कलंक समझा जाता था, जिस पर व्यक्ति कभी गौरवान्वित नहीं था। जो व्यक्ति इन कामान्धों का शिकार हो जाते थे, उन्हें बुद्धिमानों से निर्देश लेने की सलाह दी जाती थी। पुराने समय में चारित्रिक कमजोरियों की न तो प्रशंसा की जाती थी न मान्यता मिलती थी।

किन्तु आधुनिक युग में लोगों ने अपने निम्न स्वरूप की आराधना करना प्रारम्भकर दिया है। वे अपनी इन्द्रियों के दास बन गये हैं, फिर भी ऐसे जीवन पर वे शर्मिन्दा नहीं हैं। इस भौतिकवादी युग के नवयुवक प्रसार माध्यमों से निर्देशित होते हैं। वे उन बुजुर्गों के उदाहरण द्वारा भी दिक्कभ्रमित हो जाते जो यौन को एक कौतुक और इस कौतुक को ही जीवन मानते हैं।

वे यह नहीं जानते कि इस प्रकार के मुक्त यौनाचार द्वारा वे स्वयं को शारीरिक, मनोवैज्ञानिक एवं नैतिक रूप से पतन के गर्त में ले जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त, वे समाज को भी भ्रष्ट कर रहे हैं। इस प्रकार का स्वच्छन्द

और छिछला यौन-सम्बन्ध विकृत मानसिकता, बुरे स्वास्थ्य और अपराध भावना की ओर ले जाता है।

किसी भी उम्र और किसी भी स्तर का साधक-जो आत्मसाक्षात्कार का इच्छुक है, को यौन प्रलोभन में नहीं आना चाहिए। यदि वे स्वयं को इस प्रलोभन में उलझाते हैं और यह धारणा रखते हैं कि बाद में वे इस पर नियंत्रण पा लेंगे, तो उनकी यह धारणा बिल्कुल गलत है। वे उस व्यक्ति के समान हैं, जो जानबूझकर दलदल में पैर रखता और जितना उससे निकलने का प्रयत्न करता उतना हीं भ्रमवश डूबता जाता है।

अत: गृहस्थ तथा उनके बच्चों को यह जानना चाहिए कि जीवन में सच्ची सफलता, सुख और पूर्णता के लिए उन्हें भौतिक शरीर के प्रति सम्मान रखना होगा और यौन सम्बन्धों के गहन स्वरूप की पहचान करनी होगी। अन्तत: जब वे परिपक्व हो जाते हैं, तो उनका मन मुक्त यौनाचार की भ्रामकता से ऊपर उठ जाता है।

विषय सुख के भ्रामक जाल में उलझा हुआ मन, यौन सुख के भ्रम को भी बडी गहराई से पकडे रहता है। उसका यह भ्रम न केवल बुढ़ापे तक बना रहता है बल्कि, उसके बाद भी वैसा ही रहता है। इस प्रकार आप समाज में ऐसे अनेक लोगों को देखते हैं, जो सत्तर, अस्सी वर्ष की आयु में भी इस भ्रम के दास बने रहते हैं। उनकी आत्मा एक के बाद दूसरा शरीर धारण करती रहती है और हर जन्म में उनको यह भ्रम पीछा नहीं छोडता।

काम वासना से पीडित नब्बे वर्ष का वृद्ध, अपनी यौन इच्छा की पूर्ति के लिए एक के बाद दूसरा साथी बदलता रहता है। ऐसा व्यक्ति सच्चे अर्थों में सफल या सुखी नहीं है। वह अनेक प्रकार की विपत्तियों से घिर जाता है। एक बार जब आप इस भ्रम को दूर करने का प्रयास आरभ कर देते हैं, तो आपके अन्दर असीम्य शान्ति प्रकट होती है और आपके व्यक्तित्व में अनेक प्रकार के दिव्य गुण उत्पन्न होने लगते हैं।

सच्चे ब्रह्मचर्य का मार्ग

काम वासना पर विजय प्राप्त करने का निर्देश सभी धर्मों में दिया गया है। परन्तु हिन्दू धर्म-ग्रंथों में ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन विशेष प्रकार से किया गया है तथा इसे जीवनान्तर्गत व्यवहार में लाने की रहस्यमय अन्तर्दृष्टि भी बतायी गयी है।

'ब्रह्मचर्य' का शाब्दिक अर्थ 'ब्रह्मन्' में स्थित रहना और आचरण करना है। अहम् ब्रह्मास्मि-मैं ही ब्रह् हूँ' इस चेतना में स्वयं को स्थित कर देना ही सर्वोच्च स्तर का बह्म्चर्य है। परन्तु सापेक्षिक और व्यावहारिक स्तर पर ब्रह्मचर्य, राजयोग में वर्णित एक प्रमुख यम है। यह आध्यात्मिक साधना का एक महत्वपूर्ण आधार स्तंभ है। इसकी वास्तविक अभिव्यक्ति यौन कामना को संयमित कर उसे उच्च शक्ति में रूपान्तरित करने के रूप में होती है।

शारीरिक ब्रह्मचर्य

वैदिक योजना के अनुसार मनुष्य अपना जीवन ब्रह्मचर्य आश्रम से आरंभ करता है। इसमें साधना, तप के साथ-साथ रति क्रियाओं से दूर रहने का विधान है। छात्र के रूप में आपका ब्रह्मर्य शरीर तक ही सीमित था। अपनी यौन कामना को नियंत्रित करते हुए किसी भी प्रकार के यौनाचार से दूर रहना ही ब्रह्मचर्य की साधना थी। जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्ति के लिए शारीरिक ब्रह्मचर्य का अभ्यास अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

यदि छात्र जीवन में ही आपके अन्दर तीव्र आध्यात्मिक प्रेरणा प्रस्फुटित हो जाती तो आप नैष्ठिक ब्रह्मचारी बने रहने का संकल्प ले लेते हैं। ऐसी भी कुछ महान आत्मायें हैं, जो पूर्व जन्मों के उन्नत आध्यात्मिक संस्कारों के कारण अल्पायु में ही उत्कृष्ट स्तर का शारीरिक और मानसिक शुद्धता प्राप्त कर लेती हैं। यदि ऐसा है, तो ब्रह्मचारी के लिए विवाह करके गृहस्थाश्रम में आने की आवश्यकता नहीं है। वह तुरन्त सन्यास लेकर वासना और कामना से परे दिव्य ईश्वरीय प्रेम की अनुभूति के लिए प्रयत्नशील हो जाता है।

दूसरी ओर, यदि किसी छात्र ने ब्रह्मचर्य आश्रम में रहते हुए शारीरिक ब्रह्मचर्य का पालन किया है, परन्तु उसमें वैराग्य नहीं उत्पन्न हुआ है, तो गृहस्थाश्रम उसे मानसिक ब्रह्मचर्य के अभ्यास के लिए एक महान अवसर प्रदान करता है। इस आश्रम में वह अपने अचेतन मन से वासना की जड़ों को निर्मूल करने का सुअवसर प्राप्त करता है।

गृहस्थाश्रम में व्यक्ति अपने पति अथवा पत्नी के प्रति पूर्ण निष्ठा विकसित करता है। उनका यौन सम्बन्ध, यौन शक्ति को संयमित और संतुलित करते हुए एक विशेष दिशा में प्रवाहित करने में सहायक हो जाता है। पति-पत्नी जब उच्च स्तरीय प्रेम विकसित कर लेते हैं, तो उनके सम्बन्धों में धीरे-धीरे यौनाचार कम होने लगता है। इस प्रकार गृहस्थ क्रमश: ब्रह्मचर्य के ऊँचे सोपान पर चढ़ने लगते हैं।

मानसिक ब्रह्मचर्य

इस स्तर पर ब्रह्मचर्य के अभ्यास के लिए मन के ऊपर निरन्तर निगरानी रखने की आवश्यकता होती है। आत्मनिरीक्षण के द्वारा ज्योंहि मन में यौन सम्बन्धी विचार उठे, उन्हें पहचान लें और मन को परमात्मा में लगा उन्हें आरंभ में ही समाप्त कर देना चाहिए। चाहे कोई सन्यासी अथ्वा गृहस्थ है, ब्रह्मचारी अथवा शादी शुदा व्यक्ति क्यों न हों, उन सबों को आत्मविश्लेषण तथा आत्मनिरीक्षण द्वारा मानसिक ब्रह्मचर्य का अभ्यास करना आवश्यक है। केवल शारीरिक रूप से रतिक्रिया से दूर रहना ही पर्याप्त नहीं है।

यदि अचेतन मन से वासना के बीज को विनष्ट करने का प्रयास नहीं किया गया, तो अनियंत्रित वासना क्रोध में और क्रोध, लोभ में परिवर्तित हो जाएगा। "काम, क्रोध, और लोभ" ये नरक के तीन द्वार हैं-भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं। ये तीनों रजस से उत्पन्न होते हैं तथा सम्बन्धित और परस्पर निर्भर हैं। जब तक कोई अपने अचेतन मन से इन तीनों के बीज को विनष्ट नहीं कर देता, तब तक वह इस भ्रम में रह सकता है कि वह ब्रह्मचर्य का अभ्यास कर रहा है। परन्तु ब्रह्मचर्य की शक्ति उसे प्राप्त नहीं होगी और इनके बीज को समाप्त करने का साधन इस सत्य की अनुभूति में समाहित है कि "मैं यह शरीर नहीं, बल्कि अमर आत्मा हूँ।"

शारीरिक चेतना से परे

यौन, आहार और निद्रा की आवश्यकता सभी जीवधारियों में समान रूप से होती है। परन्तु, मानव को विवेक शक्ति प्राप्ति है, जिसके कारण वह अन्य जीवों से अलग और उत्कृष्ट माना जाता है। अपनी बुद्धि को शुद्ध बनाकर वह विवेक ज्योति को प्रबल कर काम का रूपान्तरण ओजस् शक्ति में कर सकता हैं। अपनी अन्त :-प्राज्ञिक शक्ति के द्वारा वह शारीरिक चेतना से भी ऊपर उठ सकता है।

कुण्डलिनी विद्या के अनुसार अधिकांश लोगों में कुण्डलिनी नीचे के तीन चक्रों तक ही सीमित रहती है। इसलिए, उनका मन निरन्तर भोजन, यौन और विभिन्न इन्द्रिय भोगों में लगा रहता है। परन्तु, व्यक्ति जब विकास की उन्नत अवस्थायें प्राप्त कर लेता है, तो उसकी कुण्डलिनी ऊँचे चक्रों तक प्रवाहित होने लगती है। परिणामतः उसमें उन्नत चेतना उद्घाटित होने लगती है।

अपरिपक्व व्यक्ति वासना को ही प्रेम समझ बैठते हैं। परन्तु निर्मल चित्त और परिशुद्ध बुद्धि विकसित कर के साधक वासना पर विजय प्राप्त कर उसे सच्चे प्रेम में रूपान्तरित करने में सफल हो जाता है। तब अपने परिशुद्ध म की सहायता से क्षणिक वासनागत भोग तथा आत्मिक आनन्द में स्पष्ट भेद करने में वह समर्थ हो पाता है। जैसे-जैसे सुखानुभूति के लिए इन्द्रियों

पर उसकी निर्भता कम होने लगती है, वह अन्तरात्मा की ऊँची अवस्था की अनुभूति के द्वारा उन्नत प्रकार के आनन्द और पूर्णता का अनुभव करने लगता है।

यौन क्रियाओं में संलग्नता का कारण स्वयं को स्त्री अथवा पुरुष शरीर समझना है। परन्तु, व्यक्ति की अन्तरात्मा -जो उसका मूलभूत स्वरूप है न तो स्त्री है और नहीं पुरुष। वह भौतिक शरीर के विभिन्न लक्षणों से भी अप्रभावित है। कर्मों के कारण जीवात्मा किसी जन्म में पुरूष और किसी जन्म में स्त्री के रूप में पुनर्जन्म लेती है। एक बार जब आप इस तथ्य को अच्छी तरह समझ लेते कि आप आत्मा हैं, तो आप लिंग की भावना से मुक्त हो जाते तथा इसी जीवन में शारीरिक तथा यौन चेतना से परे हो जाते हैं।

व्यक्ति जब एक दूसरे को शरीर के रूप में देखने लगता है, तो वह स्वयं को निम्नस्तर पर ला देता है। परन्तु, जब वह एक दूसरे को आत्मा के रूप में देखने लगता है तो यह स्थिति अत्यन्त उच्च और प्रेरक है। किसी सम्बन्ध की आरंभिक अवस्था में जब इस भाव की अभिव्यक्ति होने लगती है, तो वहीं व्यक्ति अनुभव करता है कि शरीर तो मात्र वस्त्र के समान है। आत्मा, शरीर और यौन भावना से परे है।

गृहस्थों के लिए ब्रह्मचर्य

गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का यह अर्थ नहीं है कि अब ब्रह्मचर्य के अभ्यास की कोई आवश्यकता ही नहीं है। इसके विपरीत, बुद्धिमान गृहस्थ, जो जीवन की सर्वोच्च उलब्धि करना चाहते हैं, उनके लिए ब्रह्मचर्य के अभ्यास के लिए विवाह एक प्रभावी कदम है। वैवाहिक जीवन का उद्देश्य ही गहन प्रेम की क्रमिक अनुभूति के लिए यौन कामना को गहरा अर्थ और दिशा प्रदान करना है। सच्चे अर्थों में सफल वैवाहिक जीवन में कुछ समय के पश्चात, पति-पत्नी यौनाचार पर नहीं निर्भर करते । वे आन्तरिक रूप से अधिक गहरा सम्पर्क बना लेते हैं, और जीवन के चार पुरूषार्थ को प्राप्त करने में एक दूसरे को अभिन्न मित्र की तरह सहयोग करने लगते हैं।

ऐसे ही परिपक्व प्रेम के बीच असुरक्षा की भावना पूरी तरह समाप्त हो सकती है। यदि दम्पतियों के बीच वासनागत आनन्द ही एक मात्र सम्पर्क सेतु है, तो दोनों पूरी तरह असुरक्षित रहते हैं और सोचा करते हैं कि पता नहीं कब कौन तलाक देकर चला जाय। परन्तु, जब पति-पत्नी के बीच यौनाकर्षण कोई महत्व नहीं रखता, तो उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं रहती कि उनकी ढलती उम्र में पत्नी अथवा पति उन्हें छोड़कर चला जाएगा। उस समय उनके मन में यह भी शंका नहीं होती कि यदि किसी रोग अथवा दुर्घटना से उनकी शारीरिक सुन्दरता समाप्त हो गयी तो उनका सहयोंगी उन्हें त्याग देगा। आपका सम्बन्ध दो शरीरों का बन्धक नहीं बल्कि, दो आत्माओं के मिलन का प्रतीक बन जाता है।

उपरोक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए, वैवाहिक सम्बन्ध में पति-पत्नी के बीच परस्पर पूरी निष्ठा और सच्चाई के साथ एक दूसरे के प्रति समर्पण अत्यन्त आवश्यक है। वैवाहिक सम्बन्धो में भी दम्पत्तियों को आत्मसंयम और मर्यादा बनाए रखने की आवश्यकता होती है। वैवाहिक जीवन को समझदारी बढ़ाने, अचेतन में विद्यमान वासनागत संस्कारों को दूर करने और दिव्य प्रेम के विकास से वानप्रस्थ तथा सन्यास मार्ग पर चलने के लिए आवश्यक प्रेरणा देने वाला होना चाहिए। इन दो अन्तिम अवस्थाओं में ब्रह्मचर्य का वृक्ष जिसका अंकुरण ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रस्फुटित हुआ था गृहस्थाश्रम में विशाल वृक्ष के रूप में पुष्पित होकर आत्माक्षात्कार का फल प्रदान करने लगता है।

प्रेम का विकास

इस प्रकार गृहस्थाश्रम की व्यवस्था ब्रह्मचर्य का विरोध करने के लिये नहीं बल्कि, पूर्ण करने के लिए की गयी है। ब्रह्मचर्याश्रम में आप ब्रह्मचर्य के अभ्यास की ओर पहला कदम बढ़ाते हैं। इसके बाद आप गृहस्थाश्रम के माध्यम से ब्रह्मचर्य की उन्नत अवस्थाओं की ओर बढ़ते हैं। जब आप वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करते हैं तो आप ब्रह्मन् का ध्यान कर ब्रह्म में स्थित रहने की कला विकसित करते हैं। सन्यास आश्रम में जब आप को आत्मज्ञान हो जाता है, तो आप पूर्ण ब्रह्मचारी बन जाते हैं। ब्रह्मचर्य का वास्तविक अर्थ भी यही है।

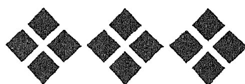
ब्रह्मचारी बनने की यह सुन्दर योजना कैसे क्रियाशील होती है इसके लिए एक उदाहरण दिया जा रहा है। कल्पना करें, कि आपके पास एक छोटा सा बरगद का पौधा है और आप चाहते हैं कि एक दिन यह विशाल वृक्ष बने। आप इसके चारों ओर ऐसी घेराबन्दी कर देते हैं कि कोई बकरी इसको चरने न पाए। जब कभी आप देखते हैं कि कोई बकरी उसे खाने के लिए लपकती है, तो आप उसे दूर भगा देते हैं। यदि वह नन्हा सा पौधा बोलने वाला होता तो आपसे कहता-"आप यह सब क्यों कर रहे हैं ? मेरे चारों ओर घेरा बन्दी क्यों बना रहे हैं? मुझे ऐसे ही छोड़ दीजिए।" परन्तु, आप अच्छी तरह जानते हैं कि यदि आपने इसकी बात मान ली तो यह बच नहीं सकता। इसलिए, आप अपने अनुभव और ज्ञान के आधार पर उसकी रक्षा के लिए जो कुछ भी करना उचित होता है करते हैं।

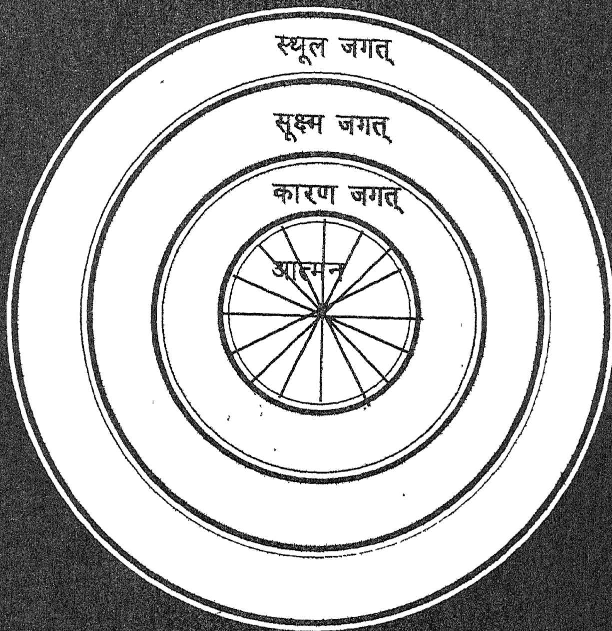
इसी प्रकार, परमहंस का मानना था कि यदि कोई व्यक्ति लगातार सात वर्षों तक सफलतापूर्वक ब्रह्मचर्य का अभ्यास करले तो उसमें कुण्डलिनी के सातों चक्र सहज रूप से जाग्रत हो जाते हैं। अनेक सन्त-महात्माओं की मान्यता भी ऐसी ही है। योगशास्त्रों में ऐसा कहा गया है कि मन, प्राण और यौनशक्ति परस्पर गहराई से सम्बन्धित हैं। यौनशक्ति के नियंत्रण से प्राणों में सन्तुलन और मन में एकाग्रता होती है। पतंजलि महर्षि ने अपने राजयोग सूत्र में यह घोषणा किया है कि ब्रह्मचर्य में पूर्णतः प्रतिष्ठित साधक को अतुलित शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है। ब्रह्मचर्य तंत्रिकातंत्र को चुस्त करता है, मस्तिष्क को पाषण देता है, प्राणों में सन्तुलन लाता है और मन को उन्नत स्थिति में रखता है। सभी सद्गुणों का आधार ब्रह्मचर्य ही है।

महात्मा गाँधी का मानना था कि जो व्यक्ति मानवता की सेवा में अपना जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, उन सबों को ब्रह्मचर्य का अभ्यास करना चाहिए। इससे उन्हें विशेष प्रकार की आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है। महात्मा गाँधी अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य के उपासक थे। उन्होंने इस पर बहुत बल दिया था कि यदि इन तीनों का व्यावहारिक जीवन में अभ्यास किया जाय तो

मानव समाज की अनेक समस्याओं का समाधान सहज ही प्राप्त हो जायगा और मानव संस्कृति का स्तर बहुत ऊँचा हो जाएगा। इसके विपरीत, यदि सत्य, अहिंसा तथा ब्रह्मचर्य के आदर्शों की उपेक्षा कर दी गयी तो संस्कृति का ह्रास हो जायगा और समाज में भयंकर, अराजकता फैल जाएगी।

आधुनिक युग में रेडियो, टी. वी. और सिनेमा के माध्यम से युवक भौतिकवादी आर्कषणों के जाल में फँसते जा रहे हैं। इसी कारण से अधिकांश व्यक्ति ब्रह्मचर्य के आदर्श को प्राप्त करना असंभव मानते हैं। परन्तु, यदि प्रचार के इन प्रभावी माध्यमों के द्वारा जेसस क्राइस्ट, बुद्ध, शंकराचार्य, महात्मा गाँधी, रमण महर्षि, रामकृष्ण परमहंस और ऐसे ही अन्य संत-महात्माओं, जिन्होंने इस आदर्श को अपनाया है, के जीवन को प्रदर्शित किया जाय तो युवकों को आध्यात्मिक जीवन के आदर्श की ओर आकृष्ट किया जा सकता है। वासना के आवेग को नियंत्रित कर व्यक्ति, भक्ति के माधुर्य का रसास्वादन करते हुए ईश्वर के साथ एकात्मता बना सकता है। मानव हृदय में जो अमूल्य निधि विद्यमान है इसकी कल्पना नहीं हो सकती।




स्थूल जगत्
सूक्ष्म जगत्
कारण जगत्
आत्मन

जीवन में योग

पति–पत्नी
के बीच सामंजस्य हो।
माता–पिता और संतान के
बीच सामंजस्य हो। सम्बन्धियों
और मित्रों में परस्पर सामंजस्य हो। विभिन्न
देशों में भी सामंजस्य हो। आकाश और
पृथ्वी में सामंजस्य हो। तत्वों के
बीच सामंजस्य हो। हर
जगह सामंजस्य
बना रहे !

अपने जीवन में सामंजस्य लाइए

जो व्यक्ति उपनिषद् और योग-दर्शन के शास्त्रों को पढ़ते हैं, उन्हें परस्पर दो विरोधी शिक्षाओं के कारण उलझन उत्पन्न हो जाती है। इन शास्त्रों में एक ओर सन्यास के आदर्श को प्राप्त करने का निर्देश दिया गया है, तो दूसरी ओर, निष्काम कर्म करने की महिमा गायी गयी है। इससे साधक के मन में द्वंद्व उत्पन्न हो जाता है और वह सोचने लगता है-"क्या मुझे अपने सभी प्रकार के कार्य तथा परिवार को त्याग कर हिमालय में चले जाना चाहिए या गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए परिवार में ही रहना चाहिए ?"

प्रत्येक धर्म के साधकों को ऐसी उलझन का सामना करना पडता है। ईसाई जब भगवान जेसस की इस घोषणा को पढ़ते हैं, तो उनके मन में एक प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है-"परन्तु, इसे मैं कैसे प्राप्त करूँगा ? उस समय मुझे इसके अतिरिक्त और भी कुछ करने को नहीं रहेगा। इस समय इतनी जल्दी भी क्या है? जिस साम्राज्य में अभी रह रहा हूँ वह भी तो अच्छा ही है।'

साधक को इस महत्वपूर्ण बात को अच्छी तरह जान लेना चाहिए कि आध्यात्मिक साधना का अर्थ जीवन को दिव्य गुणों से सम्पन्न कर सम्मुन्नत बनाना है। इस बात को और अच्छी तरह से समझने लिए इस उदाहरण पर ध्यान दीजिए। जंगल का एक पेड़ अपने को सुन्दर रूप में अभिव्यक्त करना चाहता है। सुबह की शीतल वायु एक दिन उसे यह संदेश देती है-"अपने को

रंग-बिरंगे पुष्पों से विभूषित कर लो।'' ठीक इस के बाद वृक्ष को दूसरा संदेश मिलता है-"ऐसा करना कोरी मूर्खता है। ऐसा कभी नहीं करो। तुमको अपनी जड़े जितनी गहराई में संभव हो उतनी गहराई में ले जानी चाहिए।'' ये दोनों संदेश परस्पर विरोधी लगते हैं। वृक्ष इन दो प्रकार के संदेशों से उलझन में पड जाता है। "क्या मुझे जडों को गहराई में ले जाने पर ध्यान देना चाहिए या पुष्पों को विकसित करने का प्रयास करना चाहिए?''

वास्तविकता तो यह है, कि दोनों सन्देश एक ही तथ्य के दो पहलू हैं। अपने मूल को खोज निकालना अधिक महत्वपूर्ण है। अपने मूल की ओर आपका प्रयास होना चाहिए। यदि वृक्ष अपनी जड़ों को अधिक गहराई में ले जाता है तो उसे अधिक जल और पोषण प्राप्त होगा। इससे उसे अधिक शक्ति मिलेगी जो उसकी सुन्दरता को स्वत: बढ़ा देगी।

इसी प्रकार, यदि व्यक्ति ईश्वर में अपने मूल को उद्घाटित कर ले, तो उसका व्यक्तित्व, उसके सम्बन्ध, व्यापार, समाज में उसकी भूमिका सब कुछ रूपान्तरित हो जाएगा और वह सच्चे अर्थों में सम्बृद्ध तथा सफल हागो।

जब किसी वृक्ष पर पुष्प आ जाता है, तो वह न केवल सुन्दर हो जाता, बल्कि उससे सुगन्ध भी निकलने लगती है। उसकी सुगन्धि दूर-दूर तक फैलती है। इसी प्रकार, जब आप आध्यात्मिक उपलब्धि कर लेते हैं, तो आपके व्यक्तित्व से स्वर्गिक सुगन्ध फैलने लगती है तथा आप के द्वारा संसार की आश्चर्य जनक रूप से सेवा होने लगती है। जो व्यक्ति आध्यात्मिक रूप से विकसित हो कर अपने व्यक्तित्व का समुन्नत विकास कर लेता है, तो वह समता, सामंजस्य, भक्ति, सद्भावना और प्रेरणा का प्रबल केन्द्र बन जाता है। हजारों पुष्पों की सुगन्ध के समान उसके व्यक्तित्व से दिव्य गुणों की सुगन्धि चतुर्दिक फैल जाती है।

ज्ञान की गहराई में अपनी जड़े स्थापित करने के लिए तीन चीजें अत्यावश्यक हैं :-मुक्ति क्या है इस विषय में आपको स्पष्ट और गहरी समझ

हो, आप इसे अपना लक्ष्य बनायें तथा असीम धैर्य और सहनशीलता पूर्वक इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जो साधन अपनाये जाते हैं, उनका अभ्यास करें।

सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय और सत्संग के द्वारा आपको मुक्ति के विषय में गहरी तथा स्पष्ट समझ उत्पन्न होती है। कुशल निर्देशन में जब धैर्यपूर्वक आप सद्ग्रन्थों का अध्ययन करते हैं, तो आपको अनुभव होता है कि ब्रह्मण्डीय चेतना प्राप्त करने का लक्ष्य बहुत दूर नहीं है। यह आपके अपने ही हृदय की गहराई में छुपा पड़ा है। सच्चाई तो यह है, कि आप स्वरूपत: दिव्य हैं। प्रत्येक धर्म में इस सत्य को अपने-अपने तरीके से अभिव्यक्त किया गया है। वेदान्त में इसे-"तत्वम् असि-'तुम वही हो' के रूप में उद्घोषित किया गया है।

बाईबिल की घोषणा है-"मैं और मेरा पिता एक ही है। स्वर्ग का साम्राज्य तुम्हारे अन्दर है। क्या तुम नहीं जानते कि तुम हीं ईश्वर हो ?" सभी धर्मों के ग्रन्थों ने यह उद्घोषित किया है कि आप स्वरूपत: दिव्य हैं। अपने को आप जैसा समझते हैं वैसा नहीं हैं। सच्चाई तो यह है, कि आप ईश्वर में ही स्थित हैं। इस सत्य को केवल उद्घाटित करने भर की आवश्यकता है। ईश्वर के बिना भला किसी का अस्तित्व कैसे रह सकता है? मानव जीवन कभी अहंकार के अधीन नहीं रहा। आपके शरीर की अत्यन्त जटिल क्रियाओं का नियंत्रण और निर्देशन अहंकार कैसे कर सकता है?

सत्संग में सुनी हुई बातों पर आप जब गहराई से विचार करेंगे, तो आपको अनुभव होगा कि आपकी गहरी जड़ें हमेंशा परमात्मा में ही स्थित रही हैं। ईश्वर के बिना आप रह नहीं सकते।

परमात्मा आप से अलग किसी सुदूर लोक में रहने वाली कोई चीज नहीं है। ईश्वर आपकी अन्तर्तम वास्तविकता है-एक मात्र सच्चाई है। इस शिक्षा को उपनिषदों ने प्रश्नों के रूप में प्रस्तुत किया है:-'मनों का मन और आँखों की आंख कौन है? ज्ञाता कौन है? द्रष्टा कौन है ?" उपरोक्त बातों को जब आप समझने लगते हैं, तो आपको अनुभव होता है कि ईश्वर को पाने के लिए आपको कहीं जाने की आव/यकता नहीं है। उसे पाने के लिए केवल अपने

मन के संस्कार और बनावट को परिवर्तित करने की आवश्यकता है। उपनिषदों का उद्घोष है -**'मन एवं मनुष्यानाम् कारणम् वन्ध मोक्षय:''**

मन को शान्त कर जब आप इसे अचेतन के दबाव से मुक्त कर देंगे तथा यह अनुभव करेंगे, कि आप नश्वर व्यक्तित्व और अस्थिर चित्त वाले नहीं हैं, बल्कि ईश्वर के साथ एक हैं। आप स्वयं परमात्मा हैं। इस सत्य के उद्घाटन से आप कभी विचलित नहीं हो सकते।

योगवासिष्ठ में लिखा है कि यदि आप परमात्मा में स्थित हैं, तो महा विनाश के समय जहाँ पृथ्वी टुकड़े-टुकडे में नष्ट हो रही हो, आकाश से अँगारों की वर्षा हो रही हो फिर भी, आप स्थिर चित्त और शान्त रहेंगे। इस प्रतीकात्मक उदाहरण में यह बताने का प्रयास किया गया है, कि जो व्यक्ति यह अनुभव कर लेता है, कि वह निरन्तर ईश्वर में ही स्थित है, तो उसे आत्मा की अमरता की अनुभूति हो जाती है। परिणाम स्वरूप, वह सभी परिस्थितियों में शान्त और स्थिर रहा करता है।

सम्पूर्ण योग के द्वारा जीवन में विकास लाइए

योग के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ-भगवद् गीता में सत्य के साक्षात्कार के लिए चार प्रमुख मार्ग बताया गया है-कर्म, ध्यान, भक्ति और ज्ञान। आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने के लिए इन चारों का दैनिक जीवन में संतुलित रूप से अभ्यास करना ही सर्वश्रेष्ठ पथ है।

कर्मयोग का मार्ग

अपने कर्तव्यों का पालन ईश्वर आराधना के भाव से करना ही कर्मयोग का निहितार्थ है। व्यक्ति को दो प्रकार के कर्तव्यों का पालन करना पड़ता है। पहला है, दैनिक जीवन के व्यावहारिक कर्तव्य:- जैसे परिवार, व्यवसाय या नौकरी से सम्बन्धित उत्तरदाईत्व और दूसरा है:- मानवता की सेवा करने की आपकी इच्छा से सम्बन्धित विविध कर्तव्य।

आत्मिक उन्नति की बहुत उँची अवस्था में आप जो कुछ भी करते हैं वह सब ईश्वर की आराधना हो जाती है। आपको नि:स्वार्थ सेवा करने का प्रयास करते रहना चाहिए। कुछ ऐसे कार्यों में स्वयं को लगाना चाहिए जिससे

आप का अथवा किसी सगे सम्बन्धियों का स्वार्थ न सधता हो। बल्कि, वह कार्य समाज के हित में व्यापक कल्याण के लिए किया गया हो। आपको हमेशा कुछ ऐसे कार्य में लगा रहना चाहिए, जिससे दूसरे लोगों को लाभ मिले। अपने आप से पूछिए "दूसरों के हित में मैं कैसे सहायक बन सकता हूँ ? आपको परमेश्वर ने जो विशेष प्रकार की प्रतिभा प्रदान किया है, उसके माध्यम से लोगों की सेवा करें।

वैदिक परम्परा में आश्रम में जाकर विभिन्न प्रकार की सेवा करने की एक अद्‌भुत प्रणाली विकसित की गयी है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी क्षमता का मानवता की सेवा में सर्वश्रेष्ठ ढ़ंग से उपयोग कर सकता है। आध्यात्मिक साहित्यों का प्रकाशन, उनका प्रसार और आत्मिक ज्ञान को विविध रूपों में जन-जन तक पहुँचाने का कार्य मानवता की प्रभावी सेवा के उदाहरण हैं। दूसरों को आत्मसाक्षात्कार की ओर प्रेरित करने का कार्य सर्वोच्च प्रकार की सेवा है।

इसके अतिरिक्त, नि:स्वार्थ भाव से किया गया कोई भी कार्य कर्मयोग है। ईश्वर की ओर से आपको जो भी कर्तव्य पूरा करने को दिया गया है, उसे व्यक्तिगत नहीं बनायें। कहने का अर्थ यह है, कि कोई भी कर्म करते समय अपनी संकीर्ण परिसीमा से बाहर आने का प्रयास करें। अपने सभी कर्तव्यों को पूरा करते हुए आपको यह अनुभव करना चाहिए कि आप समाज को उन्नत और उत्कृष्ट बनाने के लिए ही अपनी शक्ति, प्रतिभा और समय का उपयोग कर रहे हैं। परिवार, समाज अथवा अपने लिए जब आप नि:स्वार्थ भाव सें कार्य करें तो अपने परिश्रम को ईश्वर के चरणों में समर्पित कर दें। गीता के अनुसार भोजन करना जैसे सहज और व्यक्तिगत कार्य भी दृष्टिकोण परिवर्तन से एक प्रकार का यज्ञ-ईश्वरीय आराधना है। कर्मयोग में प्रत्येक कार्य ही ईश्वर की पूजा बन जाता है। जब कर्मों के प्रति इस प्रकार की भावना उत्पन्न हो जाती है, तो आपका मन कर्म के परिणाम में नहीं लगा रहता है।

आजकल लोग अपने परिश्रम के गुण **(Merit)** से अधिक, फल में रूचि रखते हैं। उनके लिए किसी भी प्रकार से लक्ष्य को प्राप्त करना ही महत्वपूर्ण

है। किसी भी प्रकार से काम पूरा करने की भावना के कारण हमलोग अधिक से अधिक आधुनिक टेकनालोजी पर निर्भर हो गए हैं। समाज के अनेक दु:खों का कारण इस प्रकार के भ्रान्ति जनक विचार हैं। किसी काम को जल्द से जल्द पूरा करने का जो दबाव व्यक्ति के मन पर है, उसके कारण उसका जीवन अत्यधिक तनाव ग्रस्त हो गया है।

साधक के कार्य को किसी प्रकार पूरा कर लेने के भाव से कर्म नहीं करना चाहिए। बल्कि, कार्य करते समय आनन्द प्राप्त करने की रहस्यमय कला विकसित करनी चाहिए। किसी कार्य को करने की प्रक्रिय ही आनन्द दायक होनी चाहिए। कर्मफल की परवाह किए बिना अपने कर्तव्यों के नि:स्वार्थ, भाव से सम्पादन से चित्त शुद्धि मिलती है-इसी भावना में ही कर्मयोग का सार छुपा है।

एक बार जब यह समझ मन में स्थापित हो जाती है तो आप अपने कार्य में सफल हो अथवा नही, परन्तु हर स्थिति में सन्तुलन बनाए रखते हैं। आप इसी बात से सन्तुष्ट रहते हैं कि आपने जो कार्य किया है उससे आपको आन्तरिक संतोष और सुख मिलता है। इस अनुभव को आपसे कोई ले नहीं सकता। यदि आप किसी कार्य में सफल नहीं भी होते हैं, तो भी उसे करने से आपकी संकल्प शक्ति बढ़ती है तथा अपने कर्तव्य को पूरा करने का एक आन्तरिक संतोष आपको मिलता है। इसलिए अपने दैनिक जीवन में कर्मयोग की भावना विकसित करना अत्यन्त आवश्यक है।

आपके दैनिक जीवन में ध्यान योग का नियमित और संतुलित रूप से अभ्यास होना चाहिए। प्रात: ४ बजे ६ बजे का समय ध्यान के लिए सर्वोत्तम है। इसे ब्रह्ममुहुर्त कहा जाता है।

आरंभ में आधे घन्टे तक ध्यान का अभ्यास करें। जब आप ध्यांनारंभ करने जा रहे हों, तो एक अगरबती और मामबत्ती जलायें। अपने इष्टदेव या किसी आदर्श व्यक्ति अथवा प्रेरक दृश्य के चित्र को बिना पलक गिराये कुछ देर तक देखते रहें। इसके बाद ऑखें बन्द करके इसी चित्र को मन में देखने का प्रयास करें। इस क्रिया को नियमित अभ्यास करते हुए अपने मन को शान्त

करें। नियमित ध्यान के कारण व्यक्ति स्पष्ट रूप से किसी विषय पर विचार कर सकता है, जीवन के सूक्ष्म तथ्यों को सहीसही रूप में समझने लगता है और जो भी कार्य वह हाथ में लेता है उसे पूरी एकाग्रता और दक्षता पूर्वक पूरा करने की शक्ति प्राप्त कर लेता है। यदि आप व्यग्र तथा बिखरे हुए मन से कोई कार्य करें तो उसे पूरा करने से अधिक समय लगेगा। परन्तु एकाग्र चित्त से आप थोड़े ही समय में अधिक कार्य पूरा करके विश्राम का भी समय निकाल लेंगे।

इस प्रकार किया गया महान् कार्य उपलब्धियों का राजद्वार खोल देता है। ध्यानाभ्यास में जैसे-जैसे आगे बढ़ेंगे, आप मन के द्वारा प्राप्त होने वाली ऊँचाईयों को उद्घाटित करने लगेंगे। समाधि, अन्त:प्राज्ञिक अनुभूतियाँ, गहन अन्तर्दृष्टि ये सभी ध्यानाभ्यासी की प्रतीक्षा करती रहती हैं।

भक्ति-मार्ग

दैनिक जीवन में अभ्यास करने वाला अगला योग भक्ति-योग है। संसार के अधिकांश धर्मों ने इस मार्ग का अनुसरण करने पर बल दिया है। यदि साधक में ईश्वर भक्ति है, तो मुक्ति का मार्ग सहज हो जाता है,। क्योंकि, इससे व्यक्ति का अहंकार विनष्ट होता है। आध्यात्मिक उन्नत्ति में अहंकार बहुत बड़ा अवरोध है। भक्ति-मार्ग इन अवरोध को अन्य किसी साधना की तुलना में अधिक शीघ्रता से दूर करता है।

प्रति दिन यह स्पष्ट समझ विकसित करनी चाहिए कि ईश्वर अनन्त प्रेम का अजस्त्र स्रोत है। आपकी आत्मा इस प्रेम को अनेक जन्मों के माध्यम से उद्घाटित करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर एक स्वाभाविक और गहरी इच्छा होती है कि वह किसी को सम्पूर्ण गंभीरता से प्रेम करे अथवा परम संतुष्टि तक किसी से प्रेम पाये। यह इच्छा, व्यक्ति में विद्यमान परम प्रेमी परमात्मा को प्राप्त करने की आन्तरिक कामना की ही एक अभिव्यक्ति है। परन्तु इस कामना के कारण जीव अनेक प्रकार के कर्म बन्धन में उलझ जाता है। आप पति, पत्नी, पुत्र अथवा अन्य सगे-सम्बन्धियों के माध्यम से प्रेम प्राप्त करने का प्रयास करने लगते हैं। परन्तु जब इन सम्बन्धों से प्राप्त होने वाला सापेक्षिक प्रेम प्रारब्ध कर्म के समाप्त होने के कारण मिलना बन्द हो जाता है, तो आपको वैसा प्रेम नहीं मिलता जिसकी आपने कल्पना कर ली

थी। तब दृश्य परिवर्तित हो जाता है और आप अपने चारो ओर नए लोग और नए सम्बन्ध बना लेते हैं।

अन्त में जब आप का मन ईश्वर में स्थित हो जाता है, तो आप अनुभव करते हैं कि ईश्वर ही व्यक्ति के जीवन और मुस्कान के रूप में स्वयं को प्रकट करते हैं। यदि आपके मित्रों से आनन्द मिलता है, तो इसका कारण यह है कि परमेश्वर का निवास आपके मित्रों में है। ईश्वर ज्योंहि अपनी महिमा समेट लेता है, उसी पल शरीर की सुन्दरता समाप्त हो जाती और यह निष्प्राण हो जाता है।

ईश्वर-भक्ति बढ़ाने का जप एक सहज परन्तु, प्रभावशाली माध्यम है। अपने मन को इस प्रकार प्रशिक्षित करें कि यह ईश्वर के किसी एक नाम का जप करते समय वैसा ही आनन्द ले जैसा कोई मिष्ठान खाकर लेता हो। जप करते समय कोई और विचार मन में नहीं आने दें। इससे आपके अचेतन मन में आध्यात्मिक शक्ति के सशक्त संस्कार बनेंगे।

ईश्वर के समीप आने का एक दूसरा साधन प्रार्थना भी है। जिस भी रूप में आप प्रार्थना करते हैं, उससे आप अपने हृदय कपाट को ईश्वर के समक्ष खोलने में सफल हो जाते हैं। भक्ति-साहित्य के अध्ययन से आपको प्रार्थना करने का निर्देश प्राप्त होगा। संसार के सभी धर्मों में भक्तों की प्रेरक एवं आदर्श कथायें मिलती हैं जिन से प्रार्थना की शक्ति का प्रमाण मिलता है। उन प्रार्थनाओं को पढ़ें जो इन सन्तों ने अपने जीवन की कठिन परिस्थितियों में गाया था। जिस प्रकार की भक्ति में ऐसे सन्त सराबोर थे, वैसी भक्ति उत्पन्न करने का प्रयास करें।

ज्ञान-मार्ग

अन्त में हम लोग ज्ञान-मार्ग की चर्चा करेंगें। इसका अभिप्राय प्रतिदिन गीता, उपनिषद् अथवा ऐसे ही किसी सद्ग्रन्थ का गहराई से अध्ययन करना है। इनके पढ़ने से आपकी बुद्धि कुशाग्र बनती है और आप यह समझने लगते हैं कि आप न तो यह शरीर हैं और नहीं मन । आप स्वरूपतः ब्रह्मन् हैं।

जब तक आप इस तथ्य की अनुभूति नहीं कर लेते, तब तक आप एक प्रकार से सम्मोहन में जीवित रहते हैं। प्रतिदिन आप अज्ञानवश अपने मन को यह बतलाने का प्रयास करते हैं कि "आप यह शरीर हैं। वाह्य वस्तुओं और परिस्थितियों पर आपका सुख आधारित है। जब तक आप एक विशेष प्रकार की सांसारिक उपलब्धि नहीं कर लेते, तब तक आप सुखी नहीं हो सकते हैं। यदि आप आध्यात्मिक पथ पर चलना आरंभ भी कर देते हैं, तो आप स्वयं को यह कहते हुए सम्मोहन में रखते हैं-"मैं आध्यात्मिक लक्ष्य से बहुत दूर हूँ। वहाँ तक पहुँचने में मुझे सैकड़ों जन्म लग जायेंगे।'' स्वयं को इस प्रकार मूल्यांकित कर आप अपने पथ में अवरोध उत्पन्न करते हैं। इसके विपरीत, मन में हीन भावना लाने के बदले अपने वास्तविक स्वरूप के विषय में चिन्तन करें। आप स्वरूपत: दिव्य परमात्मा ही हैं।

"थोड़ा'' अभ्यास ही घर पहुँचाए

यदि थोड़ा-थोड़ा करके भी आप इन चारो मार्ग का अनुसरण अपने दैनिक जीवन में करेंगे, तो कैवल्य प्राप्ति की ओर आप काफी आगे निकल जायेंगे। आध यात्मिक होने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि आप रात्रि ३ बजे गंगा के ठंढे जल में खडे हों, पैदल सारे भारत की यात्रा करें अथवा चालिस दिनों का उपवास ब्रत लेने जैसे अजीबो-गरीब कार्य करें। यह धारणा कि आध्यात्मिक व्यक्ति ऐसा कुछ कार्य करता है जो साधारण लोग नहीं किया करते-भ्रामक है।

यदि आप अपने दैनिक जीवन में समता तथा सामंजस्य लाते हैं, तो यह आपके द्वारा की गयी बहुत बड़ी तपस्या है। जो व्यक्ति प्रतिदिन थोडा ध्यान, जप, प्रार्थना, चिन्तन, स्वध्याय और ईश्वरार्पण भाव से अपने व्यावहारिक कर्तव्यों का निर्वहन करता है, तो वह कठोर तप करने वालों से अधिक आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त कर लेता है।

साधक को अच्छी तरह जान लेना आवश्यक है कि उसकी साधना में कई उतराव चढ़ाव आयेंगें। क्योंकि, मानव जीवन एक सीधी लकीर पर नहीं चला करता। समस्याओं के कारण कभी-कभी पीछे कदम भी उठाने पडते हैं।

उपरोक्त चार प्रमुख योगों का दैनिक जीवन में अभ्यास करते हुए यह प्रयास रहना चाहिए कि आप प्रत्येक स्थिति में शान्त और संतुलित रहें। प्रगति की ओर थोडा-थोडा प्रयास, कठोर तपस्या करने से कहीं अधिक प्रभावी और स्थाई उपलब्धि प्रदान करता है। सम्पूर्ण योगाभ्यास वास्तव में एक गहन साधना है। कितनी भी तीब्रता से की गयी एकांगी साधना की तुलना में इसका प्रभाव अधिक हुआ करता है। इसके अतिरिक्त, यदि आप दैनिक जीवन में समन्वित साधना करते हैं, तो आपके जीवन में अचानक कोई परिवर्तन नहीं आता। इसके विपरीत, आपका जीवन उतरोत्तर, स्थिर और समृद्ध बनता जाता है।

जिस वृक्ष की पीछे चर्चा हुई थी, उसके विषय में सोचिए। ज्योंहि उसकी जड़ें गहराई में जाती हैं, वह पोषण प्राप्त करने लगता है। परिणामत: उसका विकास आश्चर्यजनक रूप से होने लगता है। इसी प्रकार ईश्वर में ज्योंही आप अपनी जड़ स्थापित कर देते हैं, आपका व्यक्तित्व उन्नत होने लगता है। आप में जो सर्वश्रेष्ठ है उसका वितरण आप अपने मित्रों और सम्बन्धियों में करने लगते हैं। आप समाज के लिए एक प्रेरणा स्रोत और आदर्श बन जाते हैं। आपको यह देखकर आश्चर्य होगा कि जब आप अपने व्यक्तित्व को सन्तुलित बनाकर समता तथा सामंजस्य का जीवन व्यतीत करने लगते हैं, तो कैसे सहज ही सब कुछ सम्पन्न होता जाता है। समन्वित योगाभ्यास का रहस्य भी यही है।

इसलिए, अपने दैनिक जीवन में निष्काम सेवा, भक्ति, ध्यान और चिन्तन का नियमित अभ्यास करते हुए-ईश्वर साक्षात्कार के लक्ष्य के प्रति सचेत रहिए। ईश्वरीय कृपा आपको सुख, शान्ति, समृद्धि और समता प्रदान करे।





जीवन के संघर्षों का आध्यात्मिक मूल्य

मानव जीवन संघर्ष से भरा है। विभिन्न धर्मों के बीच संघर्ष है। कोई धर्म कहता है कि ईश्वर तक पहुँचने का एक मात्र पथ वही है और अन्य सभी धर्मों की आलोचना करता है। दार्शनिक और उनके विभिन्न सिद्धान्तों के बीच मतभेद है। एक दार्शनिक दूसरे के सिद्धान्त को गलत सिद्ध करता है। मानव सम्बन्ध और समाज में संघर्ष है। आप आशा करते हैं कि अच्छी धूप निकले, परन्तु, ईश्वर आकाश में काले-काले मेघ लगा देते हैं। जीवन के प्रत्येक कदम पर विभिन्न प्रकार के संघर्ष और विरोध का सामना करना पड़ता है। संघर्ष सब जगह है।

कभी-कभी साधक के मन में यह विचार उठता है कि यदि जीवन में संघर्ष नहीं होता, तो कितना अच्छा होता! "यदि ऐसा होता" यही विचार मन में संघर्ष उत्पन्न करता है। इस गलत धारणा से भ्रमित होकर अनेक साधक ऐसी स्थिति की खोज में निकल पड़ते हैं जिसमें किसी प्रकार का संघर्ष न हो। विरोध अथवा द्वंद्व का सामना नहीं करना पड़े। इनमें से कुछ तो दूर हिमालय की एकान्त गुफा में ऐसी आदर्श व्यवस्था बनाने के विचार में डूब जाते हैं। कुछ विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक प्रणालियों को अपनाने की ओर आकृष्ट हो जाते हैं। कुछ सन्यासी बन जाते। कुछ मन, इन्द्रियों और शरीर को साधने के लिए गहन तपस्या करने में जुट जाते और कुछ साधक लम्बे समय तक मौन धारण कर लेते हैं।

परन्तु, जब आप संघर्ष के महत्व के विषय में शान्त चित्त से निरपेक्ष चिन्तन करेंगे, तो आपको ज्ञात होगा कि संघर्ष के अभाव में आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करना असंभव है। विरोधी परिस्थितियाँ अवरोध उत्पन्न करती हैं और सशक्त प्रगति के लिए अवरोध का होना आवश्यक है। यदि किसी व्यक्ति को सब प्रकार से आदर्श परिस्थिति प्रदान कर दी जाय, तो वह जेलीफिस की तरह लुंजपुंज हो जाएगा। न तो उसमें कोई माँसपेशियाँ होगी, नहीं सीधी खड़ी रहने वाली हड्डियाँ। उसकी आध्यात्मिक प्रगति एकदम समाप्त हो जाएगी।

कभी-कभी आपके विचार और दृष्टिकोण की आलोचना होती है। बातों से ही नहीं बल्कि, शारीरिक रूप से भी आप को अपमान तथा यातना सहनी पडती है। इस स्थिति में आप को दु.खी नहीं होना चाहिए। उस समय आपको यह नहीं सोचना चाहिए कि इस विरोध का आपके जीवन में ऋणात्मक महत्व है और यदि यह नहीं आया होता तो आपका जीवन बड़ा अच्छा और सुखद् होता! महा-मानवों के जीवन की विभिन्न घटनाओं पर गौर कीजिए। इतिहास में अनेक उदाहरण भरे पडे हैं। ईसामसीह की न केवल आलोचना हुई बल्कि, उन्हें शूली पर लटका दिया गया। फिर भी उन्होंने उन सब को ईश्वरीय इच्छा मानकर सहर्ष स्वीकार किया। सुकरात को विष दिया गया जिसे उन्होंने शान्त और सन्तुलित मन से ग्रहण कर लिया। ये कुछ ऐसे उदाहरण हैं, जो बताते हैं कि विरोध तथा संघर्षों के बीच भी महामानवों ने धर्म-मार्ग का त्याग नहीं किया और अप्रभावित रहते हुए शान्त चित्त से अपने पथ पर बढ़ते चले गए। इतिहास साक्षी है कि विषम और विरोधी परिस्थितियाँ उनके लिये छुपे रूप में वरदान सिद्ध हुईं।

इस बात को जान लेना महत्वपूर्ण है, कि जीवन में संघर्षों के बिना आप नहीं रह सकते। किसी सरोवर से जब आप एक बाल्टी पानी निकाल लेते हैं, तो आसपास का पानी उस खाली स्थान को भरने के लिए तत्काल दौड़ पड़ता है।

इसी प्रकार, यदि कहीं भी हवा का कम दबाव बनता है, तो आस पास के वायुमण्डल से हवा और तेजी से दौड़ती हुई उस दबाव को बराबर करती है,। जिसके परिणाम से तेज आँधी तूफान आ जाता है। इसी प्रकार दिक्काल से परिमित इस संसार में प्रकृति किसी को भी चैन से नहीं बैठने देती। जब

तक आप आत्मज्ञान के द्वारा मुक्ति नहीं प्राप्त कर लेते, तब तक संघर्षों से आपको छुटकारा नहीं है।

ईश्वरीय योजना में संघर्ष की उपादेयता है। यह जीवन का एक आवश्यक अंग है। जो उलझन भरा, दुःखदायी, अशान्त और संघर्षपूर्ण लगता है, उसकी पृष्ठ भूमि में दिव्य ईश्वरेच्छा है। शान्ति, सामंजस्य और सुख की पुनर्स्थापना के लिये यह आवश्यक है।

परन्तु, ऐसा सोचकर साधक को अपनी ओर से ऐसा कुछ भी नहीं करना चाहिए, जिससे संघर्ष अथवा विरोध बढे। उसे संघर्ष बढ़ाने वाली परिस्थितियों के निर्माण में योगदान नहीं करना चाहिए। यदि आप लोगों को सुख-शान्ति से रहते देखें, तो उनकी शान्ति को भंग करने के लिए अपनी ओर से कोई कार्य न करें। परन्तु, यदि कई कारणों से संघर्ष और विरोध की स्थिति उत्पन्न हो जाय, तो साधक को चाहिए कि अपने को उस संघर्ष में उलझाने से बचाए। उसे धैर्य पूर्वक प्रतीक्षा करने की आदत बनानी चाहिए। इन विपरीत अवस्थों में भी उसे अपने आध्यात्मिक विकास का प्रयत्न बनाए रखना है। कभी-कभी उसे ऐसा लगता है कि विषम परिस्थिति में वह उतनी साधना नहीं कर सकता जितनी अनुकूल परिस्थिति में संभव है। परन्तु, सच्चाई यह है, कि विपरीत परिस्थितियों में की गयी थोड़ी सी साधना भी, अनुकूल परिस्थिति की उग्र साधना से अधिक प्रभावशाली होती है।

उदाहरण के लिए जब आप लकडी की आलमारी बना रहे होते हैं, तो उसमें कई जगह कील लगानी होती है। परन्तु, आप कितनी ताकत और संख्या में कीलें लगा रहे हैं यह उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना यह कि आप किस स्थान पर और कैसे कील लगाते हैं। यदि आप ठीक स्थान पर कील लगाते हैं, तो थोड़ी सी चोट से ही कील अन्दर चली जाती है और इच्छित कार्य पूरा हो जाता है। ठीक इसी प्रकार, यह महत्वपूर्ण नहीं है कि आप कितने घन्टे तक जप, तप, ध्यान अथवा योगसाधना करते हैं। परन्तु, यह महत्वपूर्ण है कि आपकी साधना में श्रद्धा, भक्ति, समर्पण और गहराई कितनी है। इसलिए, विपरीत परिस्थिति में आप जितनी भी साधना करते हैं उसका महत्व अत्यधिक है।

इसके विपरीत, संघर्षों का सामना करने की कला यदि आपको ज्ञात नहीं है, तो आप पलायनवादी प्रवृत्ति के बन जाते हैं। ज्योंहि ऐसी कोई परिस्थति आ जाती है, जिसे आपका अहंकार पसन्द नहीं करता, त्योंहि आप उससे पलायन करना चाहेंगे। इससे आपके व्यक्तित्व में दुर्बलता आती है। चाहे आप कहीं भी भाग कर क्यों न चले जायें, सभी जगह किसी न किसी प्रकार के संघर्ष का तो सामना करना ही पड़ेगा। धीरे-धीरे वहाँ भी ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न होने लगेंगी जिससे आपको तीव्र निराशा होगी।

इसलिए, साधक को परिस्थितियों के अनुकूल बनने और स्वयं को वातावरण के अनुसार ढालने की कला सीखनी चाहिए। संघर्ष, विषमता और विरोध से निराश नहीं होना चाहिए। इसके विपरीत, उन्हें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि यदि विकसित होना है, तो वे जहाँ भी जायेंगे, परमात्मा उनके समक्ष चुनौतियाँ प्रदान करेंगे। इन चुनौतियों के कारण उनमें संकल्पशक्ति, श्रद्धा और परिश्रम करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलेगा तथा उनके व्यक्तित्व में जो छुपे हुए सद्‌गुण हैं, वे विकसित होने लगेंगे।

व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया किसानों द्वारा अनाज साफ करने की क्रिया के समान है। अनाज से भूसा अलग करने के लिए किसान अनाज और भूसे के मिश्रण को एक टोकरी में लेकर ऊपर से नीचे गिराता है। इससे अनाज अलग हो जाता है। ठीक इसी प्रकार, संघर्ष, विरोध और विषम परिस्थितियाँ ईश्वरीय वायु के समान हैं। यदि आप श्रद्धा, भक्ति, समर्पण और धैर्य पूर्वक आध्यात्मिक पथ पर चलते हैं, तो आपके व्यक्तित्व में जितनी भी बुराइयाँ और कमजोरियाँ हैं, वे सभी दूर हो जायेंगी और जो भी दिव्य, सुन्दर और महत्वपूर्ण है, वह आपके हृदय में स्थिर हो जाएगा।

संघर्ष का उद्देश्य यही है। व्यक्ति, समाज और संसार के सन्दर्भ में भी यही सत्य है। जब विभिन्न मत, आदर्श, विचारधारा और राजनैतिक सिद्धान्तों में मतभेद होता है, तो लोगों का जीवन उथल-पुथल हो जाता है। परन्तु यदि आप ध्यान से देखेंगे, तो पायेंगे कि ये सभी कठिनाइयाँ धीरे-धीरे समाप्त हो जाती हैं और लोगों के मन में जो अधिक महत्वपूर्ण है, वह स्थापित हो जाता

है। इसलिए संसार, जीवन अथवा सम्बन्धों में जो संघर्ष उत्पन्न होते हैं, उनके पीछे एक विशेष उद्देश्य हुआ करता है। परस्पर विरोधी विचारों और धारणाओं के मध्य उपयुक्त वातावरण और परिस्थितियाँ बनती हैं, जिससे सुख, शान्ति और समृद्धि की स्थापना होती है।

जीवन में संघर्ष क्यों आते हैं? यदि इस विषय की गहरी दार्शनिक समझ आपको हो जाएगी तो आप समझने लगेंगे कि विषम परिस्थितियाँ आपकी श्रद्धा, धैर्य, समझ और सहनशीलता की परीक्षा के लिये ही आती हैं। तब आप यह अच्छी तरह ज्ञात कर लेंगे कि इन परिस्थितियों में आपकी आध्यात्मिक प्रगति और तीव्र गति से होने लगती है। आत्मिक विकास के लिए विषम स्थिति एक अनुपम सुअवसर है। ऐसी समझ उत्पन्न होते ही आप समस्याओं और संघर्षों को देखकर घबडाते नहीं हैं। बल्कि मुस्कुराते हुए उसका स्वागत करते हैं। यह धारणा कि किसी समय कभी-न-कभी आप ऐसी स्थिति बना लेंगे, जिसमें न तो कोई संघर्ष होगा और नहीं कोई समस्या, धीरे-धीरे आप के मन से समाप्त हो जाती है। इसके विपरीत, आपको यह अनुभव होने लगेगा कि आज अभी आप जिस परिस्थति में हैं, वही सबसे अनुकूल और आदर्श है।

एक बार जब आपका मन ऐसी समझ विकसित कर लेता है, तो आप आध्यात्मिक पथ पर दृढता से अग्रसर होने लगते हैं। आप सशक्त कदमों से प्रगति की ओर धीरे-धीरे बढ़ने लगते हैं। आपकी सफलता निश्चित हो जाती है। परन्तु, जब तक आप आन्तरिक असंतोष और संघर्षों से मुक्त नहीं हो जाते, जब तक आप यह धारणा बनाए रखतें हैं कि भविष्य में कभी न कभी हमारे मनोनुकूल स्थिति प्राप्त हो जाएगी, तब तक आप प्रकृति द्वारा प्रदान की गयी वर्तमान अनुकूलताओं से लाभ नहीं ले सकते। इसलिए, संघर्ष एवं विरोध के आध्यात्मिक मूल्यों पर विचार करते हुए ऐसी मन:स्थिति विकसित करें, जो हँसते हुए आध्यात्मिक दृष्टि से सभी विषमताओं और विरोधों का स्वागत कर सके।

☆☆☆



भगवान शिव

उपासना

उपासना से
हृदय शुद्ध होता, अशुभ
संस्कार विनष्ट होते, जीवन की बाधायें
दूर होती, व्यक्तित्व में गहरा रुपान्तरण होता,
जिससे जीवन वरदानों से परिपूर्ण हो जाता है।

प्रणवोपासना

निर्गुण-निराकार उपासना सर्वश्रेश्ठ है। इसमें नाम, रूप और गुण-रहित परमात्मा की उपासना की जाती है। परम ब्रह्म परमेश्वर की इस प्रकार उपासना करने के लिए उपनिषदों ने ॐट-प्रणव को ब्रह्म के प्रतीक रूप में स्वीकृत किया है।

ध्यान की इस उग्र प्रक्रिया में आध्यात्मिक चिन्तन भी सम्मिलित हो जाता है। उपासना, ध्यान की एक प्रक्रिया है जिसमें साधक स्वेच्छा से किसी भी भाव को बनाए रखता है। जबकि विचार एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें सत्य को सत्य रूप में देखने के लिए साधक अपनी सभी धारणा और भावों का परित्याग कर देता है। यद्यपि दोनों प्रक्रिया अलग-अलग हैं, परन्तु प्रणवोपासना की उन्नत अवस्था में ये दोनों एक साथ मिल जाती हैं। इस ध्यान में अग्रसर होने के लिए व्यक्ति को अत्यन्त चिन्तनशील होना पड़ता है।

ॐ संयुक्ताक्षर है, जो अ, उ, म् और अर्द्ध मात्रा के मेल से बना है। प्रणवोपासना में आप तनाव रहित होकर पूर्ण विश्रान्ति का अनुभव करते हुए मानसिक रूप से ॐ का जप करते हैं तथा इसके साथ, अ, उ, म् तथा अर्द्ध मात्रा का जो अर्थ है उस पर चिन्तन-मनन भी करते हैं।

'अ' का ध्यान

ॐ का 'अ' अक्षर भौतिक जगत्, स्थूल शरीर और जाग्रत अवस्था का परिचायक है। यह विराट का भी प्रतिनिधित्व करता है।

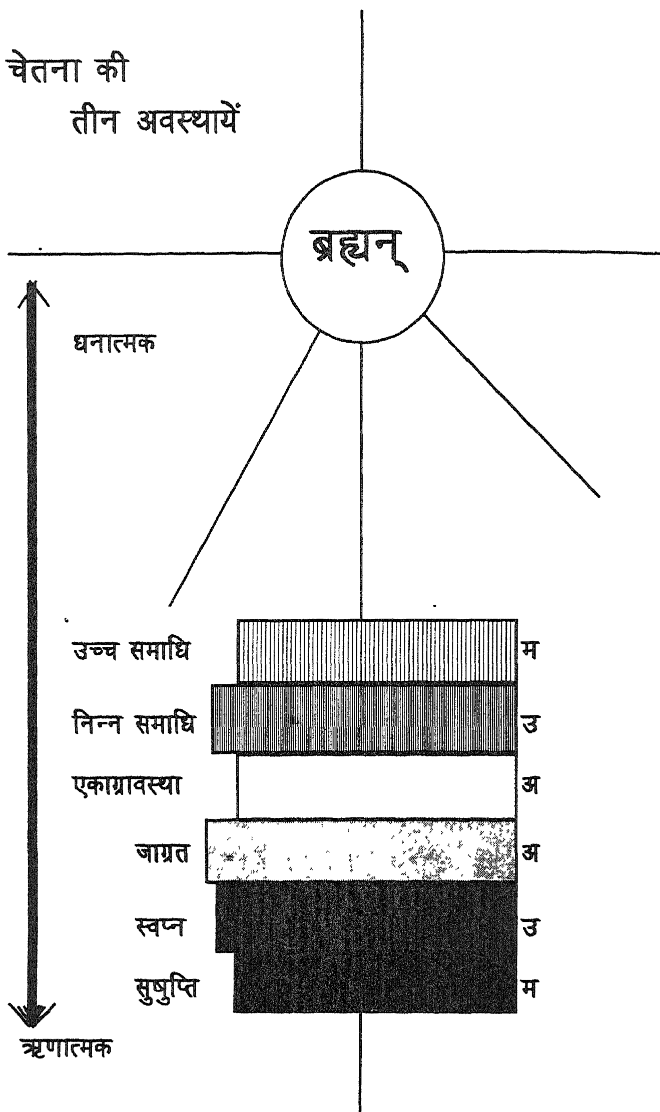
ॐ का जप करते समय आप अनुभव करें कि आप यह शरीर हैं। ऐसा करने में आपको कोई कठिनाई नहीं होगी, क्योंकि व्यावहारिक जीवन में आप स्वयं को हमेशा शरीर ही मानते हैं। परन्तु यह स्थूल शरीर है क्या ?

इस भौतिक शरीर का निर्माण प्रकृति के पॉच तत्वों से हुआ है। प्रतिपल आपकी कोशिकायें टूटती और नष्ट होती हैं और पुन: प्रकृति में ही मिलती रहती हैं। इस प्रकार आप ब्रह्माण्ड से इस भौतिक शरीर को लेते हैं और यह इसी में विलीन हो जाता है। चूँकि, आप इस ब्रह्माण्ड से अलग नहीं हैं, अत: आपको यह तथ्य अच्छी तरह समझकर निश्चय करना चाहिए-"यदि मैं यह स्थूल शरीर हूॅ तो मैं विराट अथवा सार्वभौमिक शरीर भी हूँ।"

जिस प्रकार लहर समुद्र से सम्बन्धित है, वैसे ही स्थूल शरीर विराट से सम्बन्धित है। यदि मैं भौतिक शरीर हूँ तो मैं सागर, पृथ्वी, ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, तारे सब कुछ हूॅ।" इस छोटी सी उक्ति की सहायता से आप मन में उन्नत और विस्तृत समझदारी उत्पन्न कर सकते हैं। उपरोक्त अवलोकन युक्ति संगत है। यह कोई व्यर्थ की कल्पना नहीं है। परन्तु, स्वयं को विराट रूप में समझने के लिए अत्यधिक परिकल्पना और अन्तर्दृष्टि उत्पन्न करने की आवश्यकता होती है।

ॐ के 'अ' अंश पर विचार करते समय आपको जाग्रत अवस्था के विषय में भी सोचना चाहिए तथा इसे ठीक-ठीक समझने का प्रयास करना चाहिए। जब आप जगे होते हैं, तो स्वयं को एक जाति, देश, समाज और परिवार विशेष में उत्पन्न एक व्यक्ति के रूप में देखते हैं। चूँकि, आपका शरीर विभिन्न प्रकार के कर्मों का परिणाम है, इसलिए आपके लिए कुछ वास्तविकताओं का होना भी स्वाभाविक है। जब कर्म समाप्त हो जायेंगे तो आप इस शरीर को त्याग कर दूसरा शरीर ग्रहण करेंगे।

इसलिए यदि विस्तृत दृष्टि से देखें तो पायेंगे कि जाग्रत अवस्था वास्तव में एक प्रकार का स्वप्न है। आप एक के बाद दूसरे शरीर में जन्म लेते रहते हैं। जाग्रत अवस्था अस्थाई है। यह आपकी शाश्वत स्थिति नहीं है। जब आपका चिन्तन परिपक्व और गहरा हो जाता है, तो आप यह अनुभव करने लगते



चेतना की
तीन अवस्थायें
ब्रह्मन्
धनात्मक
उच्च समाधि
निम्न समाधि
एकाग्रावस्था
जाग्रत
स्वप्न
सुषुप्ति
म
उ
अ
अ
उ
म
ऋणात्मक

हैं कि आप भौतिक शरीर से परे सूक्ष्म शरीर हैं। तब आपका मन ॐ के 'उ' अक्षर पर केन्द्रित हो जाता है।

'उ' का ध्यान

ॐ का 'उ' अक्षर स्वप्नावस्था, सूक्ष्म शरीर तथा हिरण्य गर्भ (सभी सूक्ष्म शरीरों का ब्रह्माण्डीय योग) का परिचायक है। इसमें सबसे पहले आप अपना ध्यान इस समझ पर केन्द्रित करते हैं, कि आप सूक्ष्म शरीर हैं जो प्राण, मन इन्द्रियाँ और बुद्धि के मेल से बना है। थोडा और गहराई से विचार करने पर आप यह समझ जाते हैं, कि आपके सूक्ष्म शरीर की अलग कोई सत्ता नहीं है। यह ब्रह्माण्डीय सूक्ष्म शरीर के साथ जुड़ा हुआ है। आपके विचार अहंकेन्द्र से उत्पन्न नहीं होते। इनका उद्‌गम स्रोत ब्रह्माण्डीय मन है। ज्योंहि आपका अहम् शिथिल हो जाता है, आपका मन ब्रह्माण्डीय विचार उत्पन्न करने का एक माध्यम बन जाता है।

इस प्रकार अपने मन को ब्रह्माण्डीय मन के साथ संयुक्त करने की संभावना को समझने का प्रयास कीजिए। इस बात को अच्छी तरह समझ लें, कि आपके मन में हिरण्य-गर्भ व्याप्त है। दिव्य सूक्ष्म शरीर आपके सूक्ष्म शरीर में विद्यमान है। प्रणव जप के साथ-साथ इस प्रकार का चिन्तन तथा ध्यान ॐ के 'उ' अक्षर का ध्यान है।

'म' का ध्यान

अन्त में आप ॐ के 'म' अक्षर पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं, जो मन और बुद्धि से परे कारण शरीर का परिचायक है। कारण शरीर अवचेतन मन का अत्यन्त विशाल एवं गुह्य क्षेत्र है। गहरी नीन्द में आप अपने कारण शरीर के सम्पर्क में होते हैं। यह आपके शरीर का अत्यन्त उन्नत केन्द्र है। यद्यपि निद्रावस्था में आपको कारण शरीर का कोई सकारात्मक अनुभव नहीं होता। इसलिए गहरी नीन्द में आप केवल द्वैतभाव का अभाव, काल और सीमा का अभाव और सभी प्रकार की चेतना का अभाव का अनुभव करते हैं।

ॐ का जो 'म' अंश है, वह कारण शरीर, ब्रह्माण्डीय कारण शरीर-जिसे

'ईश्वर' कहते हैं, उससे सम्बंधित है। ईश्वर ही सबों का सार्वभौमिक स्रोत है। लहरें जिस प्रकार सागर से जुडी रहती हैं, वैसे ही वैयक्तिक कारण शरीर, ईश्वर से जुड़ा रहता है। इस प्रकार 'म' पर ध्यान करने की अवस्था में आप यह समझने का प्रयास करें, कि आप अस्तित्व की गहराई में ईश्वर के साथ एक हैं।

अर्ध मात्रा का ध्यान

अन्त में ॐ में विद्यमान 'अर्ध मात्र' जो गुप्त है, का ध्यान किया जाता है। ॐ ध्वनि उच्चारित करने के बाद थोडी देर तक शान्ति रखी जाती है। इसे बिन्दु के द्वारा दर्शाया जाता है। यह जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति से परे तुरीयावस्था का परिचायक है। ध्यान की इस अवस्था में व्यक्ति यह निश्चय करता है-"मैं शरीर, मन, इन्द्रियाँ, बुद्धि, अहंकार और कारण शरीर से परे बह्म के साथ एक हूँ।''



इस प्रकार प्रणवोपासना में ॐ के जप के साथ-साथ साधक अपने उन्नत स्वरूप के विषय में चिन्तन तथा दृढ़ता पूर्वक निश्चय भी करता है। चिंतन की इस प्रक्रिया में आप निरन्तर स्वयं को शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहंकार और विस्तृत अचेतन से अलग करते हैं। इन सबों से स्वयं को हटाकर अपने ब्रह्मस्वरूप का निश्चय करते हैं।

संक्षेप में ॐ अथवा प्रणवोपासना यही है। ॐ को प्रणव हमेशा -नया बने रहने वाला भी कहा जाता है। इस उपासना के आरंभ में आपको ऐसा लगेगा कि आपने प्रणवोपासना के विषय में सब कुछ समझ लिया है तथा आप इसकी गहराई को पा गये हैं। परन्तु, चिन्तन की प्रक्रिया जितनी गहरी होती जाएगी आपको अनुभव होने लगेगा कि ॐ की कोई सीमा नहीं है। 'अ' अक्षर का ही इतना व्यापक और गहरा अर्थ है कि आप जैसे-जैसे इस पर चिंतन करेंगे, वैसे-वैसे आपको आश्चर्य होता जाएगा।

ॐ सगुण उपासना का भी आधार

अधिकांश मंत्रों का आरंभ ॐ के साथ होता है। जैसे ॐ श्री रामाय नमः, ॐ नमः शिवाय, ॐ श्री कृष्णाय नमः, ॐ नमोनारायणाय, ॐ श्री महालक्ष्म्यै नमः इत्यादि।

मानसिक रूप से जब आप ॐ का जप कर रहे हों, तो उस समय अपने इष्टदेव का ध्यान कर सकते हैं। शान्ति, आनन्द, करुणा, अनन्तता, सौंदर्य, ज्ञान, प्रभुता जैसे दिव्य गुणों के विषय में सोचिए।

ॐ के शाब्दिक उच्चारण से व्यक्ति के शरीर पर सुखद् प्रभाव पड़ता है। इससे प्राणों में सन्तुलन आता है और व्यक्ति का तंत्रिकातंत्र शक्तिशाली बनता है।

ॐ को ही आप आपना मंत्र मानकर जप कर सकते हैं । ॐ के जप के साथ यह अनुभव करें कि आप परमात्मा में ही स्थित हैं। चारों ओर से परमेश्वर आपको अपने अंकपाश में समेटे हुए हैं। ॐ उच्चारण करते समय आपकी वाणी के उद्गम और अन्त दोनों का उपयोग होता है। ॐअ+उ+म् का उच्चारण 'अ' से आरंभ होता है, यह ध्वनि गले से आरंभ होती है। जबकि 'म' के उच्चारण के लिए आपको दोनों होठ बन्द करने पड़ते हैं। इस प्रकार ॐ के उच्चारण में आपको अपने समस्त स्वर यत्र को प्रयोग मे लाना पड़ता है, जो इस बात का प्रतीक है कि जो भी बोलने लायक है वह सब कुछ आपने बोल दिया। इसलिए, संतों ने ॐ के ब्रह्म की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीक रूप में चुना है।

गायत्री मंत्र का ध्यान

वेद से लिए गए एक विशेष मंत्र की सहायता से परमात्मा का ध्यान गायत्री उपासना कहलाता है। इसे मंत्रों की जननी कहा जाता है तथा यह प्रणवोपासना का ही एक विस्तार है। जैसे कि पहले बताया जा चुका है कि ॐ परमात्मा का प्रतीक है। गायत्री मंत्र के जप के साथ जब परमात्मा का ध्यान किया जाता है तो यह और प्रभावशाली और गहन हो जाता है।

साधकों को आध्यात्मिक पूर्णता की भव्य ऊँचाई तक पहुँचा कर मुक्ति प्रदान करने के उद्देश्य से प्रबुद्ध महर्षियों ने इस मंत्र की रचना थी। चूँकि, इसकी रचना गायत्री छन्द में हुई है, इसलिए इस मंत्र को ही गायत्री मंत्र कहते हैं। यह मंत्र बहुत ही लोक प्रिय है। गायत्री शब्द का गहरा अर्थ है-"जो मुक्ति की ओर ले जाए" अथवा-"जो व्यक्ति को सांसारिकता के भय से बचाए।"

चूँकि, गायत्री मंत्र में परमेश्वर का गुण गान किया गया है। इसलिए, आप इस मंत्र के साथ अपने इष्ट मंत्र का भी जप कर सकते हैं। इससे आपका इष्ट मंत्र और पूर्ण बनता है। इसके अतिरिक्त इस मंत्र को ही आप इष्ट मंत्र के रूप में अपना कर अपने ध्यान का आधार बना सकते हैं।

गायत्री मंत्र इस प्रकार है-

"ॐ ऊर्भुवः स्वः तत् सवितुर् वरेण्यम्
भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।।

ॐ परमेश्वर अथवा ब्रह्मन् का परिचायक है। भूर्, भुवः, स्वः- स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण तीन लोक हैं। शास्त्रों के अनुसार इस सृष्टि के तीन तल हैं। भूर्-स्थूल, भुवः-सूक्ष्म तथा स्वः-कारण तल है।

'तत्' का अर्थ है "वह। 'सवितुर्' का सूर्य, "वरेण्यम्'' का '' जो पूज्यनीय है। भर्गो'' का अर्थ ज्योतिर्मय अथवा प्रकाशित, 'देवस्य' का "उस ईश्वर का'' 'धीमहि' का अर्थ "हम पूजते हैं। धियो, 'बुद्धि को कहते हैं। "योनः'' का अर्थ "हमलोगों का'' और 'प्रचोदयात्'' का अर्थ 'वे परमात्मा प्रकाशित करें''-है।

इन सबों को एक साथ रखने पर गायत्री मंत्र का अर्थ इस प्रकार है- "ॐ हम उस परमब्रह्म परमात्मा को नमन करते हैं" जो सूर्य के समान तीनों लोकों-अस्तित्व के तीन अस्तरों को प्रकाशित करते हैं। वे आत्मसाक्षात्कार की प्राप्ति के लिए हम लोगों की बुद्धि को प्रकाशित करें।

इस मंत्र के जप से बुद्धि प्रखर, सूक्ष्म तथा शुद्ध होती है। इससे संकल्प शक्ति बढती है। इस कारण मंत्र का जप ब्रह्मचारियों के द्वारा बहुत मनोयोग से किया जाता है। इस मंत्र को प्रातः, दो पहर, अथवा रात्रि में भी जपा जा सकता है। परन्तु, आप इसका जप कभी भी कर सकते हैं तथा इसके प्रभाव का आनन्द उठा सकते हैं।

भारत में हजारों वर्षों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए भक्त, शक्ति-संरक्षण तथा आत्मसंयम के लिए, साधक वेदों के गूढ़ अर्थों को जानने और स्मरणशक्ति बढ़ाने के लिए, छात्र, गृहस्थ जीवन में अनुकूल परिस्थिति प्राप्त करने के लिए इस मंत्र का जप करते आ रहे हैं। इस प्रकार, इस मंत्र के साथ सबों को अद्भुत आकर्षण शक्ति उत्पन्न हो जाती है।

गायत्री मंत्र से विविध प्रकार के अवरोध दूर होते तथा अशुभ कर्म समाप्त हो जाते हैं। वेदों में इस मंत्र की महिमा गायी गयी है । यद्यपि इस मंत्र के जप से अनेक लाभ प्राप्त होते हैं, परन्तु साधक को इन सारे लाभों की तत्काल आशा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि, उन्हें प्राप्त करना अन्य बातों पर भी निर्भर करता है।

एक महात्माजी प्रति दिन एक हजार बार इस मंत्र का जप किया करते थे। फिर भी लम्बे समय तक जप करने के बाद उन्हें इष्ट देव के दर्शन नहीं हुए। परिणामतः, वे बहुत निराश हो गए। उन्होंने मन ही मन सोचा-"मैं इस मंत्र का जप क्यों करूँ ? इससे तो मुझे कुछ भी लाभ नहीं मिला।'' उस दिन रात को सोते हुए उन्होंने स्वप्न में लकडी के सतरह बड़े-बड़े ढ़ेर को जलते हुए देखा। उनके इष्ट देव स्वप्न में प्रकट होकर उन से कह रहे थे-'ये जलते हुए लकड़ी के ढेर तुम्हारे अशुभ संस्कार हैं। तुम ने अब तक सतरह पुराश्चरण (मंत्र का निश्चित संख्या में जप) किया है, जिसके परिणाम स्वरूप अशुभ कर्मों के सतरह ढ़ेर जल कर नष्ट हो गए। चूँकि तुम्हारे द्वारा जपे गये मंत्र अब तक इन अशुभ कर्मों को जलाने में ही लगते रहे, इसलिए तुम्हें अपने मंत्र जप का कोई प्रत्यक्ष परिणाम नहीं दिखाई पड़ा। यद्यपि तुम्हारे मंत्र निरन्तर क्रियाशील रहे।'' सभी साधकों को इस कथा में छुपे संदेश को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। मंत्र जप का प्रभाव निश्चित रूप से होता है। इसकी क्रियाशीलता अत्यन्त गुह्य, सूक्ष्म और निश्चित है। इससे आन्तरिक रूपान्तरण की प्रक्रिया धीरे-धीरे पूर्ण होती है।

गायत्री मंत्र में आप आत्मज्ञान और प्रबुद्ध प्रज्ञा के लए प्रार्थना करते हैं। कई कारणों से आत्मज्ञान की प्रार्थना से बढ़कर और कोई प्रार्थना हो ही नहीं सकती। एक बार जब आप की बुद्धि अन्तः प्रज्ञा की ज्योति से प्रकाशित हो जाती है, तो आपके लिए कुछ भी असंभव नहीं रह जाता। क्योंकि, आप स्वयं सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा बन जाते हैं।

गायत्री मंत्र का ध्यान

ध्यान करते समय साधक को मानसिक रूप से इस मंत्र का जप करते रहना चाहिए। इस मंत्र के चार चरण हैं। प्रत्येक चरण के साथ विशेष प्रकार का भाव बनाए रखना चाहिए।

प्रथम चरण-**ॐ भूर् भुवः स्वः**-विस्तार का परिचायक है। इसलिए जब आप गायत्री मंत्र के इस भाग का जप कर रहे हों तो, ब्रह्माण्ड के तीनों लोक में व्याप्त अनन्त विस्तार का ध्यान करें।

द्वतीय चरण-**तत् सवितुर् वरेण्यम्** का जप करते समय सभी ज्योतियों की ज्योति जो समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त है उस परम चेतना का ध्यान करें।

ईश्वर ज्योतिर्मय सूर्य के समान है जो तीनों लोक को प्रकाशित कर रहा है। संसार की प्रत्येक वस्तु में परमात्मा की अनन्त महिमा की अभिव्यक्ति हो रही है। प्रत्येक वस्तु ईश्वर की दिव्यता और गरिमा को प्रकट कर रही है। परन्तु, अज्ञान के कारण आपको यह दिखाई नहीं पड़ता। यदि आप आत्मज्ञानी तथा प्रबुद्ध प्रज्ञावाले सन्त होते, तो आपको समस्त संसार में ईश्वर की दिव्य महिमा का दर्शन होता। सर्वत्र ईश्वरीय प्रकाश दिखाई पड़ता।

भर्गो देवस्यधी महि-तृतीय चरण है। इसके जप के समय आप बुद्धि को प्रकाशित करने वाली ब्रह्म रूपी ज्योति का ध्यान करें। अपने हृदय में ईश्वर की उपस्थिति का अनुभव करते हुए स्वयं को दिव्य चेतना के स्पन्दनों से परिपूर्ण कीजिए। सूर्य की किरणों से हिमाच्छादित चोटियाँ जैसे चमकते हुए स्वर्ण के समान बन जाती हैं ठीक इसी प्रकार, आप यह प्रार्थना करें कि आपमें आत्मज्ञान का उदय हो और आपकी बुद्धि उस प्रकाश को प्राप्त कर स्वर्ण के समान कान्तिमान बन जाए।

चतुर्थ चरण है-**धियो यो नः प्रचोदयात्**। इसके जप के समय परमात्मा के प्रति परम समर्पण की भावना विकसित करें।

इस प्रकार गायत्री के चार चरणों में आप अनन्त विस्तार अथवा सत्ता, अध्यात्मिक चेतना की ज्योति, अपने मन में आध्यात्मिक ज्योति का प्राकट्य और आत्मज्ञान के अनुभव का ध्यान करते हैं।

संक्षेप में गायत्री मंत्र के जप के साथ निम्न प्रकार के भाव बनाए रखना चाहिए-विस्तार, प्रकाश, समर्पण और साक्षात्कार अथवा दिव्य सम्पर्क।

इस ध्यान के साथ शान्त और तनाव रहित मन से इस मंत्र का जप करते रहें। अपने मन को ध्यान की गहराई में ले जाने के लिए आप किसी स्वरूप को आधार रखना चाहेंगे। आपको साकार ध्यान करने में अधिक सुगमता होगी।

उदाहरण के लिए मानसिक रूप से उगते हुए सूर्य का ध्यान करें। सूर्योदय के समय क्षितिज पर जो अदभुत परिवर्तन होते हैं, उनका स्मरण करें। मान

लीजिए कि अँधेरी रात में आप खो गए हैं। जब आप को ऐसा लगता है कि रात्रि धीरे-धीरे ढल रही है और सवेरा होने वाला है, तो आपके अन्दर एक विश्वास की भावना उत्पन्न हो जाती है। अँधेरा के समाप्त होते ही आपको मार्ग दिखाई पडने लगता है। रात में घने बादल जो भयानक दृश्य उपस्थित करते हैं, वे ही सूर्य की ज्योति में आकर्षक सुनहले रंग में बदल जाते हैं।

आध्यात्मिक ज्ञान के विकास को सूर्योदय के रूप में देखिए। जिस पल आत्मज्ञान का सूर्य उदित होने लगेगा द्वंद्व तथा दु:खों की अँधियारी रात्रि समाप्त हो जाएगी। कष्टों के काले बादल वरदान बन जायेंगे। आपके समक्ष मार्ग स्पष्ट हो जाएगा।

कल्पना करें, कि सूर्य की किरणें जब आकाश में उडते बादल, चंचल सरिता, दूर तक फैली घाटी और सफेद बर्फ से अच्छादित पर्वत चोटी पर पड़ती है, तो ये सभी कैसे स्वर्ण के समान प्रकाशित हो उठते हैं।

ऐसी ही कल्पना करें कि आत्मा का अन्त:प्राज्ञिक प्रकाश, आपकी बुद्धि, मन और सम्पूर्ण व्यक्तित्व को स्वर्णिम बना रहा है।

गायत्री मंत्र के जप के साथ-साथ आप सगुण ध्यान (किसी इष्ट के रूप का विशेष ध्यान) का अभ्यास कर सकते हैं। आप इस मंत्र की अधिष्ठात्रि देवी-गायत्री का ध्यान कर सकते हैं। गायत्री देवी कमल पर विराजमान हैं जिनकी दस भुजायें और पॉच मुख हैं। उनकी भुजाओं में शंख, गदा, खप्पड़, पद्म्, और अन्य चीजें हैं।

अनेक सिर और भुजायें इस बात का परिचायक है कि देवी (परमात्मा) सर्वव्यापक और सर्व शक्तिमान है। उनकी हाथों की चीजें दिव्य गुण तथा महिमा के परिचायक हैं। देवी की कृपा से सभी प्रकार की बाधायें विनष्ट हो जाती हैं, देवी की गदा इसका प्रतीक है। भक्त में आध्यात्मिकता प्रस्फुटित होने लगती है-कमल इसका परिचायक है। इसी प्रकार, देवी की भुजाओं में जो अन्य चीजें हैं, उनका कोई न कोई प्रतीक अर्थ है।

सूर्योदय काल में सविता की पहली किरण से जैसे प्रकृति का कण-कण

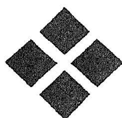
रोमांचित हो जाता है, वैसे ही आप अनुभव करें कि दिव्य ईश्वरीय विद्यमानता से आपका शरीर, मन और सम्पूर्ण व्यक्तित्व रोमांचित हो रहा है।

अपने मन में ज्योतिर्मय सूर्य की इस भावना को बनाए रखते हुए इसे परमेश्वर की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति जो अस्तित्व के तीन स्तर-तीनों लोक को प्रकाशित कर रहा है समझें। इसे सभी ज्योतियों की परम ज्योति के रूप में देखें। उस ईश्वर की उपस्थिति की चेतना विकसित कर अपनी सम्पूर्ण बुद्धि और अहंकार को उसके चरणों में समर्पित करें। वह परमात्मा आपकी बुद्धि को अन्त:प्रज्ञा में रूपान्तरित करे !

जब आपका मन ध्यान की गहराई में प्रविष्ट हो जाएगा तो मंत्र जप की प्रक्रिया बन्द हो जाएगी। परन्तु मंत्र के अर्थ, भाव तथा प्रतीकात्मक रूप आपकी मानसिक दृष्टि में बने रहेंगे।

जब आप ईश्वर की दिव्य उपस्थिति के भाव के साथ ध्यान की और गहराई प्रवेश करेंगे, तो आपके शरीर, वातावरण, नाम, रूप, काल, और स्थान की चेतना समाप्त हो जाएगी। जब आपको अत्यन्त मधुर और दिव्य प्रेम का अनुभव होने लगता है, तो आपका मन दिक्काल की चेतना से ऊपर उठ जाता है।

ईश्वरीय उपस्थिति की इस अनुभूति से आप सभी को अपने स्वरूप के समान ही देखने लगते हैं। आप वास्तव में यह शरीर नहीं हैं। आप समय और स्थान की सीमा में नहीं बन्धें हैं। सुख-दुख का प्रभाव आपकी आत्मा पर नहीं पड़ता। यह प्रखर सूर्य की तरह भावातीत और परात्पर है। यह ईश्वर के साथ एक, शाश्वत, अनन्त और परमानन्द स्वरूप है।



महामृत्युंजय मंत्र का ध्यान

ॐ त्रयम्बकम् यजा महे सुगन्धिम् पुष्टि वर्द्धनम्
उर्वारूकमिव बन्धनान् मृत्युर्मुक्षीय माऽमृतात्।।

हम लोग उस परम ब्रह्म परमेश्वर को नमन् करते हैं, जो तीन आँखों वाले और तीन शक्तियों वाले हैं तथा जो सुगन्धि तथा पुष्टि को बढ़ाने वाले हैं। जिस प्रकार लताओं से पका हुआ फल सहजता से पृथक हो जाता है, वैसे ही हम लोग मृत्यु के जाल से मुक्त होकर अमरत्व प्राप्त करें।''

इस वैदिक मंत्र में प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में रहने वाली अमरत्व प्राप्त करने की उत्कृट आकांक्षा की अभिव्यक्ति हुई है। अमरत्व की उपलब्धि और मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिए जीवन एक सतत् संग्राम है। व्यक्ति द्वारा किया गया प्रत्येक कार्य, उसके द्वारा अनुभूत प्रत्येक अनुभव और जीवन की प्रत्येक परिस्थिति, उसे सांसारिकता के अन्धेरे कूप से निकाल कर अमरत्व के अनन्त ज्योतिर्मय सागर की ओर ले जाने के लिए आवश्यक अवस्था है।

ध्यान में परमात्मा के साथ लम्बे समय तक हुए सम्पर्क के बाद प्राचीन ऋषियों ने भगवान शिव की स्तुति के रूप में इस मंत्र की रचना किया। उनके हृदय में दिव्य अनुभूतियों के कमल पूर्णतः प्रस्फुटित हो चुके थे। जिसके परिणाम स्वरूप उन लोगों ने अनमोल गुपृ रहस्यों के खजाने को खोलने के लिए ऐसे ही अनेक मंत्रों को कुँजी की तरह प्रस्तुत किया। वेदों में इनका ही संग्रह है।

इसे महामृत्युंजय मंत्र कहा जाता है जिसका अर्थ -मृत्यु को जीतने वाला मंत्र है। दीर्घ जीवन प्रदान करने की कोई भी प्रक्रिया मृत्युंजय-मृत्यु पर विजय करने वाली कहलाती है। परन्तु, इस मंत्र को महामृत्युंजय इसलिए कहा जाता है कि यदि इसे श्रद्धा-भक्ति पूर्वक जपा गया तो इससे मुक्ति प्राप्त होती है, जिससे जन्म-मृत्यु का चक्र हमेशा-हमेशा के लिए समाप्त हो जाता है।

परमब्रह्म परमात्मा ही विशेष रूप से अभिव्यक्त हो कर भगवान शिव कहलाते हैं। महर्षियों ने अन्य देवताओं की तरह अपनी अन्त:प्राज्ञिक दृष्टि से भगवान के शिव रूप को भी देखा है। जो अत्यन्त गुह्य एवं प्रतीक अर्थ से परिपूर्ण है। परमात्मा ही शिव रूप में अभिव्यक्त हुए हैं। उनकी जटायें आध्यात्मिक जीवन के रहस्यों के परिचायक हैं। ये हिमालय पहाड की असंख्य श्रृंखलाओं जो आध्यात्मिक विचारों की कडिया हैं, का भी प्रतिनिधित्व करता है। गहन ध्यान और चिन्तन से आध्यात्मिक विचारों की असंख्य कडियाँ उत्पन्न होती हैं।

भगवान शिव के माथे पर गंगा की धारा है। यह आध्यात्मिक ज्ञान की धारा का प्रतीक है। वे माथे पर द्वितीया का चन्द्रमा धारण किये हैं। जो मन के ऊपर उनके पूर्ण स्वामित्व का परिचयक है। अधिकांश लोगों का मन दोलायमान होता रहता है। परन्तु भगवान शिव के सिर पर केवल द्वितीया का चन्द्रमा ही शोभायमान रहता है, जो यह बताया है कि भगवान शिव ने मन रूपी चन्द्रमा को पूर्णत: अपने अधीन कर लिया है।

शिव के गले में लिपटे सर्प ब्रह्माण्डीय शक्ति के प्रतीक हैं। उनके शरीर में मशान की लिपटी हुई राख आध्यात्मिक ज्ञान की उस अपार शक्ति का परिचायक है, जिसमें सभी प्रकार के कर्म एवं परिसीमायें जल जाती हैं। भगवान शिव शुभ, तथा सन्यास-त्याग की प्रतिमूर्ति हैं। जो कुछ भी सत्य, शुभ, एवं सुन्दर है, उन सबों के जीवन्त स्वरूप भगवान शिवजी हैं।

पुराणों के अनुसार भगवान शिव की तीसरी ऑख जब खुलती है, तो प्रलय हो जाता है। ईश्वरीय योजना के अन्तर्गत प्रलय की उपादेयता और

आवश्यकता है। सामान्य स्थिति में उनका तृतीय नेत्र बन्द ही रहता है। पुराण में एक कथा आती है। भगवान शिव एक बार आँखे बन्द कर गहन समाधि में लीन थे। उस समय कामदेव अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ उन की समाधि भंग करने के लिए अनेक प्रकार से प्रयास करने लगे। उनके बहुत प्रयास के पश्चात् भी शिव की समाधि नहीं टूटी, तो कामदेव ने अपने धनुष पर पुष्प वाण चढ़ाया और उन पर प्रहार किया। भगवान शिव ने आँखें खोल कर चारों ओर देखा। इसके बाद उन्होंने अपनी तीसरी आँख खोली। इसके खुलते हीं, उनके ललाट से एक अग्नि निकली जिससे झाडियों में छुपे कामदेव जल कर भस्म हो गये। कहानी के अनुसार तब से कामदेव दिखाई नहीं पड़ते और परोक्ष रूप से ही रहते हैं।

शिव की तीसरी आँख अन्त:प्राज्ञिक दृष्टि की परिचायक है, जिसके खुलते ही काम, वासना और इच्छाओं की जडें जल कर भस्म हो जाती हैं।

महामृत्युं-जयमंत्र विघ्न-वाधा को दूर कर दीर्घजीवन प्रदान करने वाला है। जब आप इस मंत्र के गहरे अर्थ को समझते हुए भगवान शिव को परमेश्वर मान कर ध्यान करते हैं, तो निर्वाण के रूप में आपको जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि प्राप्त होती है। हम लोग इस मंत्र के प्रत्येक शब्द का अध्ययन करते हुए इसके गंभीर अर्थ को उद्घाटित करने का प्रयास करेंगे।

ॐ

ॐ इस मंत्र का आवश्यक अंग नहीं है। केवल इस मंत्र को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए इसे जोड दिया गया है। ॐ परमेश्वर का प्रतीक है। परमब्रह्म परमेश्वर का आह्वान करने के लिए यह एक गुह्य सूत्र है।

त्र्यम्बकम्

'त्र्यम्बकम्' का अर्थ तीन नेत्रों वाला देव है। जैसे कि पहले कहा जा चुका है कि भगवान शंकर त्रिनेत्रधारी हैं। उनकी दो आँखें विश्व की व्यावहारिक वास्तविकता को देखती हैं। तीसरी आँख इस संसार से परे अन्त:प्राज्ञिक दृश्य

देखती है, जिसे प्रतीक रूप से पुराणों में कहा गया है कि तीसरी ऑख खुलते ही सृष्टि में प्रलय आ जाता है। अर्थात संसार समाप्त हो जाता है। इस कथन का भावार्थ यह है, कि तीसरी (अन्त·प्राज्ञिक) आंख खुलते ही संसार मिथ्या रूप जान पडता और साधक को एक अन्त: प्राज्ञिक दृष्टि प्राप्त हो जाती है जिस से वह संसार की असारता को देख लेता है। भगवान शिव को तीसरी ऑख प्राप्त है, जो यह बताती है कि वे अपनी दो आंखों से जीवन के व्यावहारिक पक्ष को बनाए रखते, संसार की रक्षा और पालन करते रहते है। परन्तु, अपनी तीसरी ऑख की सहायता से वे इस संसार से ऊपर उठकर परमब्रह्म परमेश्वर में ही निरन्तर स्थित रहते हैं।

त्र्यम्बकम्' शब्द की एक और व्याख्या संस्कृत में दी गयी है-"त्रिज्ञत: अम्बिकम् यस्य"-जो तीन शक्तियों-क्रियाशक्ति, इच्छाशक्ति और ज्ञानशक्ति का स्वामी है। इन तीन शक्तियों की अधिष्ठात्रि देवी क्रमश:, दुर्गा, लक्ष्मी और सरस्वती देवी हैं।

दुर्गा को सिह, लक्ष्मी को कमल पुष्प और सरस्वती को हंस पर आसीन दिखाया गया है। इसका गुह्यार्थ इस प्रकार है-साधना के आरंभिक काल में साधक को अपने निम्न स्वरूप की विकृतियों और बाधाओं पर विजय करनी पड़ती है। काम, क्रोध, लोभ, अहंकार ये सभी अपरिष्कृत विकृतियां (मल) हैं। इस अवस्था में आध्यात्मिक शक्ति दुर्गा का रूपधारण कर इन विकृतियों को दूर करती है।

मल के समाप्त होते ही, साधक के हृदय में आत्मा का कमल प्रस्फुटित होने लगता है। दिव्यगुणों की मधुमक्खियॉ खिले हुए कमल पुष्प की ओर आकृष्ट होने लगती हैं। तब आध्यात्मिक शक्ति, देवी लक्ष्मी के रूप में साधक को भौतिक और आध्यात्मिक श्री-सम्पति से परिपूर्ण कर देती है।

आध्यात्मिक यात्रा की अन्तिम अवस्था स्वेतवस्त्रधारी ज्योतिर्मयी माता सरस्वती के द्वारा प्रकाशित हो जाती है। हृदय में अज्ञान अँधकार को दूर करने वाली अन्त:प्रज्ञा का उदय ही देवी सरस्वती का अवतरण है। वे हंस वाहिनी हैं, जो विवेक का परिचायक है तथा उनके हाथों में वीणा सुशोभित है, जो शान्ति तथा समता के सुमधुर संगीत का प्रतीक है।

इस प्रकार भगवान शिव को त्र्यम्बकम् इसलिए कहा गया है, कि वे इन तीन शक्तियों के स्वामी हैं।

यजामहे

"यजामहे" का अर्थ है-हम उस ईश्वर की आराधना करते हैं। आराधना एक ऐसी क्रिया है, जिसमें साधक अपनी आत्मा को परमात्मा के साथ संयुक्त कर देता है। अज्ञान से उत्पन्न वैयक्तिक अहंकार को परमात्मा के चरणों में समर्पित कर दिया जाता है। हृदय की वेदी पर जल रही ज्ञानाग्नि में इसकी आहुति चढ़ा दी जाती है। यह सर्वोच्च कोटि का यज्ञ त्याग है। "यजामहे" समर्पण, आत्मनिवेदन, ईश्वर से एकात्मता और परमात्मा में लीन होने का परिचायक है।

अहंकार से परे होते ही साधक को ब्रह्माण्डीय जीवन के अनन्त सागर की चेतना हो जाती है। सांसारिकता के महाजंगल में वैयक्तिक सत्ता तो एक छोटी सी लता में लगी कलि के सदृश है। संसार तो तीन गुणों से निर्मित है। तमस-मूढता, जड़ता और आलस्य लाता है। रजस के कारण व्यक्ति में व्यग्रता, क्रियाशीलता और विभिन्न प्रकार की कामनायें उठती हैं। शुद्धता, प्रखरता, शान्ति तथा समता का कारण सत्व है।

परमेश्वर तक चलने वाली अपनी यात्राक्रम में प्रत्येक जीवात्मा को तमस के अवरोध को तोडना होता है। मन तथा इन्द्रियों की व्यग्र क्रियाशीलता के रूप में रजस पर विजय प्राप्त करनी होती है। अन्त में परमब्रह्म परमेश्वर की अन्त·प्राज्ञिक अनुभूति के द्वारा सत्व से भी ऊपर उठना होता है। मृत्यु के पश्चात् भी इस आध्यात्मिक सुगन्ध को छोड़ कर योगी चले जाते हैं।

इस आत्मिक सुगन्धि के अभाव में ही व्यक्ति विभिन्न प्रकार की मनोकायिक व्याधियों से पीडित रहता है। सभी बीमारियों की जड मूल व्याधि-अविद्या है। इससे ही मानसिक बीमारियाँ आधि हो जाती हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा असामंजस्य ये सभी मानसिक बीमारियों की ही अभिव्यक्तियाँ हैं। इस कारण शरीर में प्रवाहित प्राणों में असंतुलन आ जाता है। इसके परिणाम स्वरूप शरीर में अनेक प्रकार की बीमारी-व्याधि हो जाती है। इसलिए शिव के परमब्रह्म परमेश्वर के रूप में अनुभव करते हुए, उनके ध्यान से साधक के मन तथा शरीर की सभी बीमारियाँ दूर होती हैं तथा उसकी आत्मा की सुगन्ध बढ़ती है।

पुष्टिवर्धनम्

इसका अर्थ पुष्टि-पोषण बढ़ाने वाला है। परमात्मा वही है जो सुगन्धि तथा पुष्टि को बढ़ाये। पुष्टि का अभिप्राय व्यक्तित्व के विभिन्न अवयवों से है। आपके व्यक्तित्व के चार प्रमुख स्तंभ हैं-ज्ञान, भाव, संकल्प और क्रिया। जब आपको भगवान शिव की कृपा प्राप्त होती है, तो इन चारों पक्षों का सन्तुलित विकास होता है और पुष्टि बढ़ती है।

जिस प्रकार प्रतिदिन फल उतरोत्तर पकता जाता है, वैसे ही जीवात्मा भी सांसारिकता के जंगल में अपनी लता से लगी हुई दिन प्रति दिन परिपक्व हो पूर्णता की ओर बढती रहती है। जैसे-जैसे कोई फल पकने लगता है प्रकृति उसमें सुगन्धि और मिठास भरती जाती है। इसी प्रकार भगवान शिव भी आप की परिपक्वता बढाने के साथ-साथ व्यक्तित्व में मधुरता और सुगन्धि भरते जाते हैं। आत्मज्ञानी सन्त सांसारिकता के वृक्ष पर पके हुए फल के समान होते हैं।

परमेश्वर मायापति अथवा प्रकृति के स्वामी हैं। वे मन, आत्मा और शरीर इन सबों को पोषण प्रदान करते हैं। अत्यन्त विषम समस्या, दयनीय स्थिति तथा मानसिक कष्टों के समय अपने चित्त में स्थित, परमेश्वर की ओर मुडिए। अनुभव कीजिए कि वही आपको शान्ति दे रहा है। वही आपके शरीर की प्रत्येक कोशिका में स्पन्दित है। उसी का आनन्द आपकी रग-रग में प्रवाहित हो रहा है। ऐसा अनुभव करते ही, आप सभी प्रकार की परेशानियों से मुक्त हो जायेंगे।

उर्वारुकमिव

इसका अर्थ--ककड़ी अथवा कद्दू जैसी लता है। जब तक फल अच्छी तरह पक नहीं जाता, तब तक तो यह पौधे से लगा रहता है। परन्तु, पूरी तरह तैयार हो जाने से यह पौधे से पृथक हो जाता है। इसे पुन: पौधे पर जोडा नहीं जा सकता है।

इसी प्रकार, प्रत्येक व्यक्ति संसार रूपी लता में लगी एक ककड़ी की तरह है। संसार को इसलिए लता कहा गया है, क्योंकि इसमें अनेक शाखा और उपशाखायें हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति को कर्मों के जाल में उलझा देती हैं। भगवान शिव की अनुकम्पा से आप व्यक्तित्व विकास के द्वारा परिपक्व बन कर अनेक प्रकार के दिव्य गुणों को विकसित करते हैं। ज्योंहि, आप में पूर्णता आ जाती

है, आप सांसारिक लता से पृथक हो जाते हैं और फिर कभी वापस इसमें नहीं उलझते । अविद्या से मुक्ति ही आध्यात्मिक साधना-आत्मा साक्षात्कार की चरम परिणति है ।

बन्धन्न मुत्योर्मुक्षीय

इसका अर्थ है-"हम सबों को मृत्यु के बन्धन से मुक्त करें । मृत्यु, अंधकार का प्रतीक है जो आत्मा के विकास में अवरोध डालती है। अविद्या ही मृत्यु का मूल कारण है । अस्मिता, राग, द्वेष, स्वार्थपरता ये सभी मृत्यु के जाल हैं । समस्त सांसारिक प्रपंच मृत्यु का विशाल फंदा है । जीवन-मृत्यु के विरूद्ध छेडा गया सतत संग्राम है । आध्यात्मिक जीवन से अमरत्व और मृत्यु पर विजय प्राप्त होती है ।

माऽमृतात्

इन शब्दों का अर्थ है-मुझे अमरत्व की ओर ले चलें । मैं ब्रह्मन् के अमर लोक से पृथे न होऊँ ।

साधारण फल तो गिर कर नष्ट हो जाता है, परन्तु सांसारिकता की लता में लगा आत्मा का परिपक्व फल पक कर लता से हटने के बाद नष्ट नहीं होता । मुक्ति के बाद यह परमानन्द के अनन्त सागर में मिल जाता है । जिस प्रकार एक नदी सागर से मिल जाती है, वैसे ही यह परमात्मा से मिल जाता है। मन, बुद्धि और इन्द्रियों से ऊपर उठ कर अपनी पूर्णता को उद्घाटित कर लेता है और अपने सच्चिदानन्द स्वरूप में स्थित हो जाता है ।

इस प्रकार वेद रूपी उद्यान में यह छोटा सा महामृत्युंजय मंत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण मंत्र है । यह भक्तों को मुक्ति के साथ-साथ आनन्द भी प्रदान करता है। इससे इच्छायें पूर्ण होती, ईश्वर-भक्ति जगती, आत्मा में दिव्य गुणों का विकास होता और जीव, जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाता है ।

श्रद्धा, भक्ति, समर्पण पूर्वक आप इस मंत्र का जप करें । परमेश्वर की कृपा से इसका दिव्य प्रभाव आपके हृदय में प्रकट हो जो आपको मुक्ति प्रदान करे ।

भगवान शिव की अनन्त कृपा आप सबों को प्राप्त हो । ॐ नमः शिवाय:

इन्टरनेशनल योग सोसायटी
स्वामी ज्योतिर्मयानन्द आश्रम
एक परिचय

शहादरा दिल्ली से ७ कि मी तथा ऐतिहासिक लालकिला से लगभग १५ कि मी उत्तर पूर्व, दिल्ली-उ० प्र० सीमा पर ५००० वर्गगज में फैला यह आश्रम अत्यन्त शान्त और सुन्दर परिवेश में निर्मित है। इसके चतुर्दिक हरियाली एवं पुष्पो से भरे उपवन है, जो प्राचीन ऋषि-महर्षियों के दिव्य आश्रम की याद दिलाते है। आश्रम के भव्य-भवन में आधुनिक सुविधाओं से युक्त निवास स्थल के अतिरिक्त विशाल सत्सग भवन, सद्ग्रन्थों से भरा पुस्तकालय अनुभवी एवं एम बी बी एस, एम डी डिग्री प्राप्त चिकित्सक युक्त अस्पताल और निजी प्रिटींग प्रेस है। यहॉ नियमित सत्संग स्वाध्याय, साधना और सेवा-कार्य चलते रहते हैं। इन सबों से बढ़कर आश्रम परिसर मानवता के भाग्य को परिवर्तित करने की शक्ति से पूर्ण, पूज्य गुरुदेव योगमार्तण्ड श्रीस्वामी ज्योतिर्मयानन्दजी के दिव्य और गत्यात्मक आध्यात्मिक स्पन्दनों से परिव्याप्त है।

आरंभिक आधार -३ फरवरी १९७४ समस्त आध्यात्मिक जगत के लिए एक अत्यन्त शुभ दिन था। पूज्य गुरुदेव श्रीस्वामी ज्योतिर्मयानन्दजी के जन्म दिवस पर आयोजित सत्संग सभा में स्वामीजी के कार्यों को भारत मे प्रसारित करने के उद्देश्य से युवक संयोजक शशिभूषण मिश्र ने **"स्वामी ज्योतिर्मयानन्द योग संस्थान"** नामक संस्था की स्थापना की। भारत में इन्टरनेशनल योग सोसायटी का यही आरभिक आधार बना।

इन्टरनेशनल योग सोसायटी

स्वामी जी ने १९६९ में ही इस सोसायटी की स्थापना अमेरिका में की थी। परन्तु, जब "स्वामी ज्योतिर्मयानन्द योग संस्थान" के माध्यम से स्वामीजी की आध्यात्मिक क्रियायें भारत में बढने लगी, तो शिष्यों के आग्रह पर मार्च १९७८ में "इन्टरनेशनल योग सोसायटी" की स्थापना स्वामीजी ने किया। १९७८ से १९८४ अगस्त तक इसकी समस्त क्रियायें पटना (बिहार) से होती

रही। १९८४ में आश्रम के लिए भूमि मिलने पर इसे दिल्ली सीमा पर स्थित लालबाग कॉलनी, गाजियाबाद उ० प्र० मे स्थानान्तरित कर दिया गया।

सचालक

आश्रम की समस्त गतिविधियॉ पूज्य गुरुदेव श्रीस्वामी ज्योतिर्मयानन्द जी महाराज के निर्देशानुसार उनके अनन्य भक्त एव समर्पित शिष्य योगिरत्न डॉ० श ण मिश्र एम बी बी एस, डी अर्थो, एस आर एफ एवं डॉ० प्रतिभा मिश्र एम. बी बी एस, डी जी ओ, एम डी की देख-रेख में चलती है।

सोसायटी के उद्देश्य

१ जाति, लिंग, सम्प्रदाय से ऊपर उठ कर सबों को एक ही दिव्य जीवन की अनुभूति कराते हुए सभी धर्मों के सन्त, महात्मा, अवतार, गुरु तथा आध्यात्मिक उपदेशो मे वर्तमान मूलभूत एकता को उद्घाटित कर, संसार के समस्त धर्मों में सामन्जस्य विकसित करना। आध्यात्मिक जीवन के मूल्यों तथा दर्शन का प्रसार करना।

२ योग-वेदान्त और भारतीय-दर्शन की शिक्षा देने के लिए नियमित एवं सुनियोजित कक्षायें चलाना।

३ जीवन के शाश्वत आध्यात्मिक मूल्यो के आधार पर मानवता के सांस्कृतिक उत्थान में योगदान करना। सभी लोगों में आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करने की प्रेरणाग्नि प्रज्वलित करने के लिए गोष्ठि, परिचर्चा, सभा तथा सत्संग आयोजित करना। आध्यात्मिक साहित्यों का प्रकाशन तथा शैक्षणिक संस्थाओं का निर्माण करना।

४ रोगी तथा पीडित मानवता के लिए अस्पताल, लावारिस बच्चों विधवाओं तथा वृद्धों की देखभाल के लिए विशेष प्रकार के अनाथालयों की व्यवस्था करना। आध्यात्मिक साधकों का मार्गदर्शन करना।

गतिविधियाँ

योग-साधना शिविर :-समय-समय पर साधकों के लिए योग-साधना शिविर आयोजित किया जाता है। विद्यार्थियों और बच्चों के लिए अलग शिविर लगाये जाते हैं। इसमें साधना सम्बन्धी पूर्ण प्रशिक्षण दिया जाता है।

पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद एवं प्रकाशन :–पूज्य गुरुदेव की अँग्रेजी पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद करने का कार्य निरन्तर चल रहा है। इस समय तीस पुस्तकें अनूदित हो चुकी हैं तथा अन्य कई पुस्तकों का अनुवाद प्रगति पर है। इनका प्रकाशन भी आश्रम के अपने प्रेस से होता है।

रोगियों की सेवा :–आश्रम के अस्पताल- स्वामी ज्योतिर्मयानन्द चैरिटेबल हॉस्पिटल में सभी प्रकार के रोगों की चिकित्सा की जाती है। बच्चों को निःशुल्क रोग प्रतिरोधक टीके लगाने की भी व्यवस्था है।

'योगान्जलि' मासिक पत्रिका का प्रकाशन :–पूज्य गुरुदेव के उपदेशों को भारतीय जनमानस तक पहुँचाने के लिए 'योगान्जलि' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन विगत कई वर्षों से हो रहा है। इसमें स्वामीजी द्वारा योग, वेदान्त-दर्शन, सदाचार तथा जीवन की समस्याओं को गहन अन्तर्दृष्टि तथा दार्शनिक आधार पर सुलझाने के लिये प्रेरक निर्देश प्रकाशित किए जाते हैं।

दिव्य ज्योति पब्लिक स्कूल :–आरंभ से ही बच्चों में आध्यात्मिक संस्कार स्थापित करने के साथ-साथ उच्चस्तरीय शिक्षा की व्यवस्था की गयी है। छोटे बालकों को आसन, प्राणायाम, ध्यान, प्रार्थना सिखाए जाते हैं तथा हिन्दी/अँग्रेजी माध्यम से शिक्षा दी जाती है।

वृद्धों की सेवा :–आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर, अवकाश प्राप्त अथवा जो वानप्रस्थ जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, उनके रहने और साधनामय जीवन व्यतीत करने की आदर्श सुविधा आश्रम में उपलब्ध है।

आपके सहयोग का स्वरूप

ज्ञान यज्ञ :–आप आश्रम की पुस्तकों के प्रकाशन में आर्थिक सहयोग देकर पूज्य गुरुदेव के दिव्य कार्य में सम्मिलित हो, ज्ञान-यज्ञ कर सकते हैं।

श्रम एवं समय दान : श्रम तथा समय देने की एक योजना बनाई गई है। ऐसे व्यक्ति अपने दैनिक जीवन का कुछ समय सोसायटी को देकर इसके कार्यों के प्रसार में सहयोग कर सकते हैं। सप्ताह में किसी एक दिन के लिए भी सेवा कार्य किया जा सकता है।

नियमित अनुदान :– समर्थ व्यक्ति नियमित अनुदान देकर एक महान योजना को क्रियान्वित करने में सहयोग दे सकते हैं। नियमित अनुदान करने वाले प्रत्येक महानुभाव को प्रतिमाह कोई न कोई साहित्य निःशुल्क भेजा जाता

है। आश्रम के पुस्तकालय में आप नई-पुरानी पुस्तकें, अस्पताल के लिए दवाइयाँ तथा कार्यालय सम्बन्धित अन्य चीजों का दान देकर सहयोग दे सकते हैं।

सदस्यता

वे सभी सदस्य जो सोसायटी के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अपना सहयोग देने को सहमत हैं, इसके सदस्य बन सकते हैं।

सोसायटी के सदस्य निम्न प्रकार के हैं :-

संस्थापक सदस्य:- जिन लोगों ने इस सोसायटी की स्थापना किया है, वे इसके संस्थापक सदस्य हैं।

आजीवन सदस्य :-सोसायटी को एक बार २५०० रु० देकर आजीवन सदस्य बना जा सकता है। इन सबों को आश्रम की हिन्दी तथा अँग्रज़ी पत्रिका आजीवन नि:शुल्क भेजी जाती है तथा उन्हें आश्रम के समस्त प्रकाशनों पर ३० प्रतिशत की छूट दी जाती है।

वार्षिक सदस्य :- सोसायटी की सदस्यता के लिए ७५ रुपये वार्षिक राशि निर्धारित की गई है। ऐसे प्रत्येक सदस्य को एक वर्ष तक 'योगान्जलि' पत्रिका नि:शुल्क भेजी जाती तथा अन्य प्रकाशनों पर १० प्रतिशत की छूट दी जाती है।

संरक्षक सदस्य :- आश्रम की गतिविधियों को सुचारु रूप से चलाने के लिए प्रतिमाह कम से कम ५० रुपये या अधिक राशि अनुदान में देने का जो संकल्प करते हैं, उन्हें संरक्षक सदस्य माना जाता है। ऐसे सदस्यों को आश्रम के साहित्य नि. शुल्क भेजे जाते हैं। उपरोक्त सभी प्रकार के सदस्य पूज्य गुरुदेव से पत्राचार द्वारा सम्पर्क करने और मार्गदर्शन लेने के भी अधिकारी हैं। इन सबों को योग रिसर्च फाउण्डेशन (अमेरिका) की सदस्यता स्वत: प्राप्त हो जाती है।



श्रीस्वामी ज्योतिर्मयानन्द

जीवन परिचय

श्रीस्वामी ज्योतिर्मयानन्दजी का जन्म ३ फरवरी १९३१ को बिहार के सारण जिलान्तर्गत 'डुमरी बुजुर्ग' नामक गाँव में हुआ था। २२ वर्ष की अवस्था में ही आप ऋषिकेश के महान सन्त, स्वामी शिवानन्द जी से सन्यास लेकर सुरेन्द्र से स्वामी ज्योतिर्मयानन्द बन गए। नौ वर्षों तक योग-वेदान्त आरण्य अकादमी ऋषिकेश में आध्यात्मिक व्याख्याता का कार्य करते हुए 'योग-वेदान्त' पत्रिका का सफल सम्पादन किया।

बहुत आग्रह के बाद आपने १९६२ में अमेरिका जाना स्वीकार किया वहाँ इन्टरनेशनल योग सोसायटी की स्थापना करके मियामी में इसका मुख्य केन्द्र स्थापित किया।

अपने मुख्य आश्रम से स्वामीजी भारत की ज्ञान-ज्योति का प्रसार कर रहे हैं। भारतीय दर्शन पर अब तक आपकी ७५ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, जिनका अनुवाद विश्व की अनेक भाषाओं में हो चुका है।

इन्टरनेशनल योग गाइड अँग्रेजी तथा **योगांजलि** हिन्दी इन दो मासिक पत्रिकाओं के माध्यम से स्वामीजी की ज्ञान-गंगा में विश्व के लाखों साधक गोते लगाकर पावन बन रहे हैं।

आज अन्तराष्ट्रीय ज्ञान-गगन में स्वामीजी का स्थान सर्वोच्च है। प्रभात के प्रखर सूर्य सा प्रदीप्त स्वामीजी का प्रेरक साहित्य, अज्ञानान्धकार में सुप्त असंख्य हृदयों को परमानन्द तथा परम-ज्ञान की ज्योति प्रदान कर रहा है। समस्त विश्व श्रीस्वामीजी को **योगमार्तण्ड** के रूप में अभिनन्दित करता है।

Authentic Yoga Books

BY SWAMI JYOTIRAMAYANANDA

हिन्दी पुस्तक

			पेपर बैक	हार्डबाउन्ड
१	योगाञ्जलि (मासिक-पत्रिका, वार्षिक)	.	७५ /=	
२	मृत्यु और पुनर्जन्म	:	३० /=	५० /=
३.	सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य	:	३० /=	५०./=
४	गृहस्थ जीवन निर्देशिका	:	३०. /=	५० /=
५	आत्मोन्नति के लिए योग निबन्ध	:	३० /=	५० /=
६	जीवन में योग	:	३०. /=	५०./=
७	योग-संदर्शिका	:	३० /=	५०./=
८	धारणा और ध्यान	:	३०./=	५० /=
९	विद्यार्थी जीवन निर्देशिका	:	३०./=	५०./=
१०	व्यावहारिक-योग	:	३० /=	५० /=
११.	महाभारत-रहस्य	.	३० /=	५० /=
१२.	रामायण-रहस्य	:	३० /=	५० /=
१३	योगवासिष्ठ भाग-१	.	३०./=	५० /=
१४	अपनी-बात भाग-१	:	३०./=	५०./=
१५	प्रेम-योग(नारद भक्तिसूत्र)	.	३०./=	५०./=
१६.	अपनी बात भाग-२	.	३०./=	५०./=
१७	योग से जीवन परिवर्तन	:	२५. /=	५० /=
१८	रचनात्मक चिन्तन की कला	.	२५. /=	४० /=
१९.	आज के सन्दर्भ में समन्वित योग	.	२०. /=	३५./=
२०	समन्वित योग एक परिचय	.	२०. /=	३५./=
२१	देवीपूजा रहस्य	:	२०./=	४० /=
२२	ज्ञान योग	.	१५. /=	२५ /=
२३	योगविश्राम से स्वास्थ्य और सौंदर्य	.	१५ /=	
२४.	योगाचार		१०. /=	
२५.	सम्पूर्ण-योग सार	:	१०. /=	
२६	व्यावहारिक साधना	.	१० /=	

1.	International Yoga Guide (Yearly subs.)	.. 150.00
2.	Applied Yoga 9`` x 12`` (Hard cover)	.. 150.00
3.	Death and Reincarnation	...150.00
4.	Concentration and meditation	. .150.00
5.	Study of Mind (Raj Yoga)	...150.00
6.	Yoga Exercises for Health and Happiness	...150.00
7.	The Way to Liberation Vol- I	...150.00
8.	The Way to Liberation Vol- II	.. 150.00
9	Yoga for Sex Sublimation Truth and non-violence	...150.00
10.	Yoga vasistha Vol- I	...150.00
11	Yoga vasistha Vol- II	. .150.00
12.	Yoga vasistha Vol- III	. 150.00
13.	Yoga vasistha Vol- IV	.. 150.00
14.	Yoga can change your life	.. 120.00
15.	Yoga wisdom of Upanisad	.120.00
16.	Yoga secrets of Psychic powers	. .120.00
17.	Yoga of Divine Love	.120.00
18.	Yoga Essays for Self-Improvement	...120.00
19.	Yoga of Perfection (Bhagwat Gita)	.120.00
20.	Yoga of Enlightenment (18th Chapter)	...120.00
21	Advice to students	...120.00
22	Advice to house holders	...120.00
23	Yoga Quotations	...120.00
24	Yoga Mystic Poems	.. 120.00
25.	Yoga Stories and Parables	...120.00
26.	Vedanta in Brief	...120.00
27.	Raja Yoga Sutras	...120.00
28.	Yoga guide	.. 120.00
29.	Yoga in life	. 120.00
30.	Mysticism of the Ramayana	.. 150 00
31.	Mysticism of the Mahabharata	.. 150.00
32.	Mysticism of the Devi Mahatmya	...150.00
33.	The Mystery of the soul	... 80.00

34	Bhagwat Gita (pocket size)	80 00
35.	Waking Dream and Deep Sleep	80.00
36.	Mantra, Kirtana, Yantra and Tantra	80.00
37.	Beauty and Health Through Yoga Relaxation	80 00
38.	The Art of positive Thinking	80.00
39.	Integral Yoga Today	. 80.00
40.	Integral Yoga-A Primer Course	. 60.00
41	Hindu Gods and Goddesses	60.00

गुजराती पुस्तकें

१.	मृत्यु और पुनर्जन्म	२० ००
२	रचनात्मक चिंतन की कला	१५ ००

स्वामीजी का प्रमुख हिन्दी कैसेट

हिन्दी कैसेट

१ सच्चा साधक कैसे बनें, चिन्ता से मुक्ति कैसे

२ मिथ्याभिमान को कैसे दूर करें, सामाजिक संदर्भ में योग साधना

३ देवी पूजा संदेश

४. लोनी आश्रम उद्घाटन

५. अपनी प्रतिभा का विकास कैसे करें, समय का उपयोग कैसे

६. मन का नियंत्रण कैसे, योग क्या है ?

७ ध्यान का अभ्यास कैसे करें

८ ईश्वर समर्पण कैसे विकसित करें, चिन्ता कैसे दूर करें

९. विजयदशमी सदेश, दैवी सम्पत्त एक परिचय

१०. सहनशीलता कैसे विकसित करें

११. द्वेष को कैसे दूर करें, अपने जीवन को कैसे समृद्ध बनायें

१२. आपका वास्तविक स्वरूप क्या है, तनाव से मुक्ति कैसे

और अन्य कैसेट। प्रति कैसेट मूल्य ४०/= रुपये मात्र

